ISSN – 2349-3100 Peer Reviewed

पञ्चमोऽङ्कः Refereed Journal

अन्ताराष्ट्रियमूल्यांकितत्रैमासिकसन्दर्भितशोधपत्त्रिका

# वेदज्योतिष्मती

## Vedajyotishmati

**संरक्षकाः**

**प्रो. रामचन्द्रझाः, प्रो. रामदेवझाः,**

**प्रो. देवेन्द्रमिश्रः, प्रो. शिवाकान्तझाः**

**प्रधानसम्पादकः**

**प्रो. हंसधरझाः**

आचार्यः, ज्यौतिषविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

भोपालपरिसरः।

**सम्पादकः**

**डॉ. आशीषकुमारचौधरी**

असिस्टेंट-प्रोफेसर, ज्यौतिषविभागः,

क.जे.सोमैया संस्कृतविद्यापीठम्, मुम्बई।

**प्रकाशकः**

**संस्कृत-अनुसंधान-संस्थानम्, के. एम. टैंक लहेरियासरायः, दरभंगा**

## सम्पादकमण्डलम्


**1 प्रो.बोधकुमारझाः**
आचार्य, व्याकरण-विभाग,
क. जे. सोमैया-संस्कृतविद्यापीठ, मुम्बई।

**2 प्रो. हंसधरझाः**
ज्योतिष विभाग ,आचार्य,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान , भोपाल परिसर, भोपाल।

**3 प्रो. प्रमोदवर्धनकौण्डिल्यायनः,**
विभागाध्यक्ष, मीमांसा दर्शन विभाग नेपाल,
नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, काठमाण्डु, नेपाल।

**4 जूही जेनोजे**
आचार्या,दर्शन विभाग,
कोरिया विश्वविद्यालय, सीओल, कोरिया।

**5 डॉ. प्रवेशसक्सेना**
पूर्व आचार्या,संस्कृत विभाग,
जाँकिर हुसैन महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय।

**6 डॉ. धनञ्जयमणित्रिपाठी**
आचार्य ,संस्कृत विभाग,
मोदी विश्वविद्यालय, राजस्थान।

**7 डॉ. दिलीपकुमारझाः**
विभागाध्यक्ष-धर्मशास्त्र विभाग
कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा।

**8 डॉ. राजीवमिश्रः**
प्राचार्य, सन्तनागपाल संस्कृतमहाविद्यालय,
एवं शोध संस्थान, सम्पूर्णानन्दसंस्कृत
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

**9 टेल्टो डेल्टेज**
आचार्य दर्शन एवं संस्कृति विभाग,
हेल्डमार्ग विश्वविद्यालय,हेल्डनवर्ग, जर्मनी।

**10 प्रो. विद्यानन्द झाः**
साहित्यविभागाध्यक्ष,
भोपाल परिसर, भोपाल।

**पुनर्वीक्षणमण्डलम्**

1. **आचार्यरामदेव झाः**
   पूर्व आचार्य ज्योतिष विभाग,
   लालबहादुर शास्त्री, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली।
2. **आचार्यनीलाम्बर चौधरी**
   आचार्य रामभगत राजीवगाँधी महाविद्यालय दरभंगा।
3. **आचार्या प्रवेशसक्सेना**
   आचार्या ,जाँकिर हुसैन महाविद्यालय
   दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली।

**प्रबंधक संपादक**

1. **श्री पंकज ठाकुर**
2. **किरणमिश्रा** ल.ना. मि.वि दरभंगा।

**परापर्शदातृसंपादकः**

1. **डॉ. रंजय कुमार सिंह**
   रा. सं. संस्थान, मुम्बई।

**सहसंपादिका**

1**डॉ गीता दूबे** ,रा. सं. संस्थान, मुम्बई।

**सम्पादकसहायकः**

**श्रीसत्यनारायणः**


@copy right – Rashtriya Sanskrit Anusandan Sansthan

Email – rsas.kothram@gmail.com, vjvv.rs@gmail.com,
Ph No. 06272-224671, 09619269812, 07506137027

पत्रिका में प्रकाशित लेखों से प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। विवाद का समाधान दरभंगा न्यायालय से ही स्वीकार्य है ।लेखों को परिवर्तित, स्वीकृत एवं अस्वीकृत करने का पूरा अधिकार प्रकाशक को होगा ।A trilingual Educational Sanskrit Research Journal Published by the Sanskrit Anusandhan Sansthan, Darbhanga

**From letter no-671/2014-15 Place on Rashtriya Sanskrit Anusandhan sansthan will kown as the Sanskrit Anusandhan Sansthan, Darbhanga**

 ISSN – 2349-3100

**राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्**
मानित विश्वविद्यालय,भोपाल परिसर,
संस्कृत मार्ग, बाग सेवनिया,
भोपाल-४६२०४३(म.प्र.)

**Rashtriya Sanskrit Sansthan**
Deemed University,Bhopal Campus,
Sanskrit Marg, Bag Sewania,
Bhopal-462043 (M.P.)

॥श्रीः॥

शुभाशंसनम्

वेदवेदाङ्गोपनिषत्स्मृतिपुराणेतिहासजन्यज्ञानमथवा मनुयाज्ञवल्क्यगौतमकणादपराशरादिभिर्विरचित-शास्त्रजन्यं ज्ञानं, किं वा तदतिरिक्तमपि महापुरुषैरनुभूतमन्वेषितं ज्ञानं, श्रुतिपरम्परयाऽथवा लिपिमाध्यमेन लोके चिरकालादनवरतं संरक्षितमस्तीति विदामतिरोहितमेव। अतो लौकिकवैदिकज्ञानोद्भासका वेदवेदाङ्गादिसम्बद्धा निखिला अपि ग्रन्थपत्रिकादयः स्वस्वक्षेत्रे नैजं नैजं विशिष्टं महत्त्वं भजते। तस्मिन्नेव क्रमे विपश्चितां ज्ञानविज्ञानमयशोधपूर्णलेखैर्भासमानाया वेदज्योष्मतीतिनामाधेयायाः पत्रिकायाः पञ्चमोऽङ्कः प्राकाश्यमेतीति महत्प्रमोदस्थानम्।

एतदर्थं पत्रिकाया अस्याः प्रधानसम्पादकाय त्रिस्कन्धज्योतिषमर्मज्ञाय आचार्यप्रवराय डा.हंसधरझामहोदयाय तथा युवदैवज्ञाय सम्पादकाय डा. आशीषकुमारचौधरीमहोदयाय हार्दं शुभाशीर्वादं प्रदाय साधुवादं ज्ञापयामि। कामये च महाकालं यदेतावुभावपि एवमेव शास्त्रसंरक्षणं शास्त्रसंवर्धनं च कुर्वन्तौ यशोभाजौ भूयास्तामिति शम् ॥

शुभाकांक्षी

(प्रो. विद्यानन्दझाः)
प्राचार्यः

ISSN – 2349-3100

# सम्पादकीयम्

भारतीयप्राचीनज्ञानविज्ञानं द्योतयन्त्याः संस्कृतहिन्द्याङ्ग्लेतिभाषात्रयोपनिबद्धायास्त्रिवेणीरूपायास्त्रैमासिक-सान्दर्भिक-शोधपत्रिकाया वेदज्योतिष्मतीतिनामधेयायाः पञ्चमाङ्कप्रसूनं पाठकानां हस्ते यातीत्यमन्दानन्दसन्दोहं जनयति । एतदर्थं सर्वप्रथमं वितनोमि साशीर्वादं साधुवादं नित्योत्साहिनः परमजिज्ञासु-युवपण्डितस्य डॉ. आशीषकुमारचौधरीमहोदयस्य सम्पादकस्य कृते, यो हि पत्रिकाया अस्याः प्रकाशने मुख्यकारणभूतोऽस्ति । यतो हि श्रीचौधरीमहोदयः राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य मुम्बय्यां सोमैयापरिसरेऽध्यापयन्नपि पत्रिकायाः सम्पादनकार्यं प्रामुख्येण सोत्साहं परिपालयति । एवमेव ते सर्वेऽपि शास्त्रस्नेहिनो विद्वांसोऽपि सन्त्यभिनन्दनीया धन्यवादार्हाश्च येषां सार्थकश्रमोद्भूतैश्शोधपत्रैः पत्रिकेयं गौरवं भजते। अस्मिन्नेव क्रमेऽभिनन्दनीयाः साधुवादार्हाश्चाक्षरसंयोजकादिसहयोगिनः पत्रिकाप्रकाशनाधिकारिणश्च येषाममूल्यं योगदानं वेदज्योतिष्मतीपत्रिकाप्रकाशनरूपज्ञानयज्ञे सम्प्राप्यते।

अन्ते च कामये आशुतोषं महाकालं यदेवमेव ज्ञानविज्ञानोद्भासितसारगर्भितविपश्चिल्लेखानुरञ्जिता पत्रिकेयं चिरं लोकानुरञ्जिनी स्यादिति ।

**वेदज्योतिष्मतीत्यस्याः पत्रिकायाः सतां प्रियः ।**
**पञ्चमाङ्कोऽपि लोके स्याद्विपश्चिच्चित्तरञ्जकः।।**

गुणैकपक्षपातिनां सहृदयानां विदुषां शुभाशंसनमपेक्षमाणः-

**(प्रो. हंसधरझाः)**

ISSN – 2349-3100

## विषयसूची पृष्ठसंख्या


| | | |
|---|---|---|
| सम्पादकीयम् | प्रो. हंसधरझाः | 4 |
| “ तत्तु समन्वयात् ”( ब्रह्मसूत्र – 1-1-4 ) | प्रो .बोधकुमार झा | 6 |
| अयनचलनविमर्शः | डा. अशोकथपलियालः | 7 |
| वैदिकाग्न्याधानमीमांसा --( प्रथमोभागः) | प्रमोदवर्धनः कौण्डिन्न्यायनः | 14 |
| ग्रहस्वरूपविमर्शः -(पूर्वार्धम्) | प्रो.हंसधरझाः | 17 |
| कालचक्रदशा | रामस्वामि शास्त्री | 20 |
| नवरात्रोपासना एवं सांस्कृतिक एकता | प्रो.प्रभादेवी चौधरी | 25 |
| नवीन सेमनाथ मन्दिर का वास्तु दृष्टि से निरूपण | डा आशीष कुमार चौधरी | 27 |
| भारतीयदर्शने योगस्य महत्त्वम् | डा. ओमनारायणमिश्रः | 29 |
| छन्दसि पुनर्वस्वोरिति सूत्रविमर्शः | ऋतम्भरा पाण्डेय | 31 |
| पिण्डादीनां साधनम् मेलापकविचारश्च | डा. नीलमाधवदाशः | 33 |
| Historical Importance of Vidyapati | Kiran Mishra | 39 |

ISSN – 2349-3100

# दार्शनिक स्तम्भ

## “ तत्तु समन्वयात् ”( ब्रह्मसूत्र – 1-1-4 )

✍प्रो .बोधकुमार झा

( शब्दार्थ – तत् = ब्रह्म , तु= तो , समन्वयात्= वेदान्त वाक्य से समुचित सम्बन्ध होने से , जाना जाता है । )

कोई वस्तु या सिद्धान्त प्रमाणित तभी माना जाता है , जब उसमें कोई प्रमाण हो । प्रमाण मुख्यतः तीन हैं – प्रत्यक्ष , अनुमान और शब्द । इनमें प्रत्यक्ष प्रमाण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । जब प्रत्यक्ष प्रमाण से किसी की सिद्धि नहीं होती , तो अनुमान या शब्द प्रमाण का सहारा लिया जाता है । अनुमान तर्क है । शब्द प्रमाण वेद को कहा जाता है । पहले अनुमान के द्वारा ब्रह्म को सिद्ध किया गया है । जिसका सारांश है कि बिना कारण का कोई कार्य नहीं होता । जगत् की सृष्टि , स्थिति और प्रलय , ये जो तीन कार्य हैं , इनका कोई कारण है । वह जो कारण है , उसी का नाम ब्रह्म है । उपर्युक्त ब्रह्मसूत्र में शब्दप्रमाण से भी ब्रह्म सिद्ध होता है , ऐसा बताया जा रहा है । ब्रह्म है – इसमें वेद ( शब्द ) प्रमाण है । वेद में निम्नलिखित मन्त्र मिलते हैं – ‘ सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ’ यह जो जगत् उपलब्ध है , यह उत्पत्ति से पहले सत् के रूप में था । ‘ एकमेवाद्वितीयम् ’ जगत् की उत्पत्ति से पहले एक ही था , कोई दूसरा नहीं था । ‘ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् ’ सृष्टि से पहले एक ‘आत्मा’ ही थी । ‘तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यम्’ वह आत्मा ब्रह्म है , वह अपूर्व है अर्थात् उससे पूर्व कोई कारण नहीं है , उसके बाद भी उसका कोई कारण नहीं है , उसके भीतर और बाहर भी कोई कारण नहीं है । ‘ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्तात्’ जो सामने यह चराचर जगत् दिखाई देता है , वह वस्तुतः ब्रह्म ही है , मगर अविद्या ( अज्ञान ) के कारण ब्रह्म से भिन्न समझ में आता है । इस प्रकार के अनेको मन्त्र वेद में उपलब्ध हैं , जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ब्रह्म को बताते हैं । यह भी कहते हैं कि ब्रह्म कैसा है ? वह नित्य , सर्वज्ञ , सभी में व्याप्त , शुद्ध , बन्धनमुक्त , विज्ञान , आनन्द आदि रूप है । वेदान्त दर्शन के द्वारा उसका ज्ञान होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है । यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि लोग दो तरह की वस्तुओं को प्राप्त करना चाहते हैं तथा दो तरह की वस्तुओं को छोडना चाहता है । धन अप्राप्त है उसे पाना चाहता है । कुछ प्राप्त भी रहता है , पर भ्रमवश उसे पाना चाहता है , जैसे गर्दन में लटकी माला को ढूंढना । इसी तरह जो वास्तव में होता है, उसे छोडना चाहता है ,जैसे पाँव में लिपटे सांप को । और जो वास्तव में नहीं होता, पर भ्रमवश होता है,उसे भी जैसे पांव में नूपुर की जगह सांप का भ्रम होने पर । इनमें जो प्राप्त नहीं रहता है और जो वास्तव में होता है । दोनों की ही प्राप्ति और परित्याग , वस्तु से ही सम्भव है , ज्ञान से नहीं । रस्सी ही है – ऐसा हजार ज्ञान भी वास्तविक सांप को रस्सी नहीं बना सकता । परन्तु जो भ्रम से उत्पन्न है , उसे तत्त्वज्ञान से प्राप्त भी किया जा सकता है तथा छोडा भी जा सकता है । इस प्रकार अविद्या के कारण अवास्तविक जीव या जगत् में वास्तविक ब्रह्म तत्त्वज्ञान से सारे क्लेश दूर हो जाते हैं और ब्रह्म प्राप्ति होने से मोक्ष रूप पुरुषार्थ मिल जाता है । यह तत्त्वज्ञान ‘तत्त्वमसि’ वह ब्रह्म तुम्हीं हो – इस प्रकार के वेदान्त वाक्य से होता है । संसार जीवन यात्रा आत्मा के भ्रमित ज्ञान से चलती रहती है । जो सचमुच आत्मा नहीं है , उसे आत्मा समझते हुए हम दिन रात लगे रहते हैं । पुत्र , पत्नी , कुटुम्ब को आत्मा समझकर हम दुःखी और सुखी होते हैं । शरीर , इन्द्रिय , मन जो आत्मा नहीं है , हम वैसा मानकर दुःख – सुख का अनुभव करते हैं । यह यात्रा उस दिन खत्म हो जाती है , जिस दिन ‘मैं ही आत्मा हूँ / मैं ही ब्रह्म हूँ’ यह तत्त्वज्ञान हो जाता है । इसका आशय यह कथमपि नहीं है कि वेदान्त का तत्त्वज्ञान हमें अकर्मण्य बनाता है । बल्कि विद्या की प्राप्ति के लिए अविद्या की आवश्यकता पर जोर देता है । अन्धकार नहीं होगा तो प्रकाश का ज्ञान कैसे होगा ? अतः ब्रह्मज्ञान के लिए जीवनयात्रा अत्यावश्यक है । बिना इसके ब्रह्मज्ञान सम्भव नहीं ।

> **सृष्टि से पहले एक मात्र आत्मा ही थी , जो ब्रहम है ।**
> **वह सबका कारण है ,पर उसका कोई कारण नहीं है । -वेद**

आचार्य, व्याकरण-विभाग, क. जे. सोमैया-संस्कृतविद्यापीठ, मुम्बई।

ISSN – 2349-3100

# अयनचलनविमर्शः

✍डॉ. अशोकथपलियालः

सूर्येण नभसि स्वमार्गे (क्रान्तिवृत्ते) एकस्मात्सन्दर्भबिन्दुतः पुनः तस्मिन्नैव बिन्दुपर्यन्तमागमनस्य कालमानेन (सूर्यस्य चलनमाभासिकं वस्तुतः पृथिव्या सूर्यं परितः वार्षिकपरिभ्रमणेन सूर्यस्य चलनं दृश्यते) पंचांगपत्रके वर्षस्य परिमाणं परिगण्यते। तत्रापि सन्दर्भबिन्दोः निर्धारणस्य द्वे पद्धती दरीदृश्येते।

(1) नाक्षत्रिकपद्धतिः निरयणप्रणाली वा - अस्यां पद्धतौ सूर्यस्य मार्गेऽर्थात्क्रान्तिवृत्त एकस्माद्बिन्दोः चयनं क्रियते यस्य निर्धारणं क्रान्तिवृत्तस्य पृष्ठस्थनक्षत्राणां (ताराणां वा) सन्दर्भे भवति। इमानि नक्षत्राणि सर्वप्रयोजनेभ्यः व्योमनि स्थिराणि सन्तीति मन्यते।[1] अत एकस्मात्स्थिरनक्षत्रतः (अश्विनीतः) पुनः तस्मिन्नैव नक्षत्रपर्यन्तं सूर्यस्यागमनकालेनोत्पन्नं वर्षमिदं नाक्षत्रं निरयणं वा उच्यते। अस्यां पद्धतौ पृथिव्या सूर्यं परितः 360 अंशात्मकपरिभ्रमणकालस्य परिमाणमेव वर्षमेकं भवति। निरयणवर्षस्य मध्यममानं 365. 256363 सावनदिनात्मकमस्ति।[2]

(2) साम्पातिकपद्धतिः सायनप्रणाली वा- स्वकक्षायां पृथिवी स्वाक्षोपरि प्रायः 23 अंश 26 कलामिता अवनता अस्ति। अनेन कारणेन पृथिव्याः विषुवद्वृत्तस्य (भूमध्यरेखायाः) आकाशे यत्समानान्तरं विषवुद्वृत्तमस्ति तत्खगोलीयविषवुद्वृतं क्रान्तिवृत्तं द्वयोः बिन्दवोः छेद्यति[3] अर्थात् खे क्रान्तिवृत्तनाडीवृत्तयोः द्वे सम्पातस्थले भवतः। तत्र यस्मिन् बिन्दौ सूर्यः भूमध्यादुपरि (अर्थान्नाडीवृत्तादुत्तरं प्रति) गच्छति तस्य 'मेषसम्पातः' 'वसन्तविषुवो' वेति संज्ञास्ति। अस्मिन् सम्पाते सूर्यः प्रायः 21 मार्चस्यासन्ने भवति। द्वितीयसम्पातस्य 'तुलासम्पातः' 'शरद्विषुवो' वेति संज्ञा। तस्मिन् सम्पाते सूर्यः भूमध्यादधस्तात् (अर्थान्नाडीवृत्ताद्दक्षिणं प्रति) प्रायः 22 सितम्बरस्यासन्नकाले गच्छति।

तत्र पृथिव्या अयनगतेः [4] कारणात् द्वौ सम्पातबिन्दू क्रान्तिवृत्ते प्रतिवर्षं प्रायः 50.27 कलामितं प्रमाणेन निरन्तरं पश्चिमदिशं प्रति अपसर्पतः। अनेन कारणेनास्याम्पद्धतौ पृथिव्या सूर्यं परितः 360 अंश - 50.27 कला मितप्रमाणेन परिभ्रमणकालः वर्षमेकमिति स्वीक्रियते। [5] तत्र सायनवर्षस्य मध्यमशुद्धमानं 365.24219 सावनदिनात्मकमस्ति। अतः निरयणवर्षतुलनायां सायनवर्षं प्रायः 0.014173 दिनात्मकं अथवा 20 मिनट 24.5 सैकेन्डमितं प्रतिवर्षं न्यूनमस्ति।[6]

वैदिकसाहित्ये सर्वत्र नक्षत्रगणना कृतिकातः समुपलभ्यते। अनेन कारणेन कृतिकायां तस्मिन् काले वसन्तसम्पात आसीदिति मन्यते विद्वद्भिः। लोकमान्यतिलकादिमतेन विषुवदिवसः अयनारम्भश्च कालक्रमेण परिवर्तितो भवति। यथा[7] -

---

[1] पंचांग में कालगणना पृ. 1। वस्तुतः नक्षत्रेष्वपि निजगतिः भवति परन्तु सूदूरवर्तित्वात्तीव्रगति- जनितस्थानभ्रंशोऽत्यल्पः प्रतीयते, अनेनैव कारणेन नक्षत्राणि स्थिराणि मन्यन्ते। .(अर्वा. ज्यो. पृ. 227)

[2] पंचांग में कालगणना पृ. 11

[3] तत्रैव पृ. 1

[4] पृथिव्याः सम्पातगतिः पुरस्सरणगतिः वा, अस्यां गतौ पृथिव्या अक्षं भूकक्षां परितः प्रायः 25800 वर्षेषु परिभ्रमणमेकं कारयति-अर्वाचीन ज्योतिर्विज्ञानम् - पृ. 34

[5] पंचांग में कालगणना पृ.2

[6] पंचांग में कालगणना पृ. 8

[7] भगणसमीक्षा पृ. 17

ISSN – 2349-3100

| क्र. | स्थितिः | विषुवदिवसः | | अयनारम्भः | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | वासन्तविषुवः | शारदविषुवः | उत्तरायणम् | दक्षिणायनम् |
| 1. | ऋग्वेदकालः | मृगशिरसि सूर्ये सति | मूले सूर्ये सति | पूर्वभाद्रपदायां सूर्ये सति | उत्तरफाल्गुन्यां सूर्ये सति |
| 2. | ऋग्वेदोत्तरकालः | कृतिकायां सूर्ये सति | अनुराधायां सूर्ये सति | धनिष्ठादौ सूर्ये सति | आश्लेषादर्धे सूर्ये सति |
| 3. | वराहमिहिरकालः | अश्विन्यादौ सूर्ये सति | चित्रायां सूर्ये सति | उत्तराषाढायां सूर्ये सति | पुनर्वसौ सूर्ये सति |
| 4. | साम्प्रतिककालः | पूर्वभाद्रपदायां सूर्ये सति | हस्ते सूर्ये सति | पूर्वाषाढायां सूर्ये सति | आर्द्रायां सूर्ये सति |

पृथिव्या अयनगतेः कारणम् - पृथिव्या अक्षस्तु तस्याः कक्षाधरातलोपरि लम्बरूपे न तिष्ठति परं च सदैव कल्पितोर्ध्वाधररेखातः (भूमध्य-कदम्बस्थानगतरेखातः) प्रायः सार्धत्रयोविंशत्यंशमिता प्रवणता भजते। अस्यामवस्थायां पृथिव्या अक्षस्योर्ध्वभागः (उत्तरी ध्रुवबिन्दुः सुमेरुः वा) कदम्बकं (क्रान्तिवृत्तस्य ध्रुवं) परितः परिभ्रमति। तदनुसारं भूमध्यसुमेरुलग्नरेखा खगोले यत्र स्पृशति स काल्पनिकबिन्दुरपि परिभ्रमति। अस्य काल्पनिकबिन्दोः समीपतमं नक्षत्रं 'तात्कालिकध्रुवः' कथ्यते। काल्पनिकबिन्दोः परिभ्रमणकालः 25800 वर्षमितः। अतः ध्रुवभ्रमणात् सम्पातौ अपि परिभ्रमतः। अतः मेषसम्पातस्य नाडीवृत्ते पूर्णपरिक्रमणं 25800 वर्षेषु भवति। अनेनैकस्मिन्वर्षे प्रायः 50.27 विकलामितं वक्रविचलनं लभ्यते।[8] पृथिव्या अयनगतिकारणं चन्द्रसूर्यग्रहाणामाकर्षणशक्तिः विद्यते। सूर्यः पृथिवीमाकर्षति परन्तु भूः पूर्णरूपेण गोलाकारा नास्ति अपितु तस्याः धुरवप्रदेशयोः निम्नत्वं विषुवरेखादेशेषु च किंचित् स्फीतं (बहिर्लम्बितम्) वर्तते अत एव सूर्येण लब्धाकर्षणं तस्याः केन्द्रगतं न भवति। यथा चित्रे –

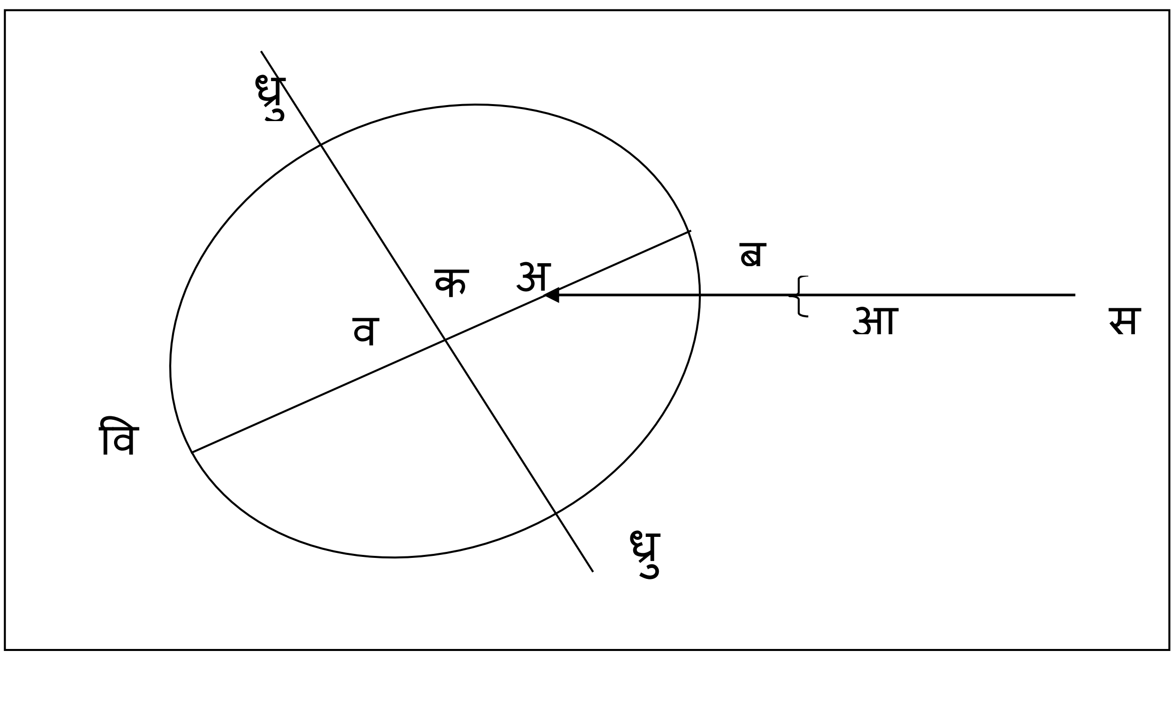


[8] अर्वाचीन ज्योतिविज्ञानम् पृ. 32-34

सू = सूर्यः, के = भूकेन्द्रम्, ध्रुर ध्रु। = पृथिव्या अक्षः, वि व = विषुवद्रेखा, अ = सूर्याकर्षणस्य केन्द्रम्। अ आ = सूर्याकर्षणस्य दिशा। अत्र चित्रेण स्पष्टमस्ति यत् 'व' स्थाने सूर्यास्याकर्षणं 'वि' स्थानस्यापेक्षाधिकमस्ति। अत एव विषुवद्रेखायाः क्रान्तिवृत्ततलैकीभूतत्वे प्रवृत्तिः सम्भाव्यते परन्त्वैवं न यतः पृथिव्याः तीव्रगतिना स्वाक्षभ्रमणत्वात् विषुववृत्तक्रान्तिवृत्तयोर्धरातलयोर्मध्यकोणः सदैव प्राय एकरूपं वर्तते, अनेन ध्रुवः कदम्बं परितः सदैव परिभ्रमिष्यति। अतः सम्पातस्य पूर्णभ्रमणं भविष्यति। एवमेव चन्द्रोऽपि पृथिव्याः विषुवरेखां निजकक्षातलं प्रति आकर्षति। परन्तु चन्द्रपातः प्रायः 19 वर्षेषु क्रान्तिवृत्तस्यैकं परिभ्रमणं पूरयति। अतः चन्द्रस्य कारणादाकाशीयध्रुवस्थाने 'अक्षविचलनं' लभ्यते। अतः ध्रुरवस्थानमयनवृत्ते तरंगवद् गच्छति। अस्य चक्रमपि राहुचक्रतुल्यं प्रायः 19 वर्षात्मकमस्ति।[9] तत्र सौरायनगतिः प्रायः 16 विकलामिता चन्द्रस्य चायनगतिः प्रायः 34.4 विकलात्मिका प्रतिवर्षं समुपलभ्यते तथापि चन्द्रस्यायनगतिः तात्कालिकस्थितिना निर्धारिता भवति।[10] तत्र सूर्यचन्द्रयोर्मध्ये प्रत्येकं प्रभावं तस्योत्तरा दक्षिणा वा परमक्रान्तिसमये अधिकतमं भवति। विषुवद्वृत्तस्यासन्ने प्रभावः प्रायः शून्यसमो भवति। परन्तु ग्रहाणामपि मेषसम्पातस्य (विषुवसम्पातस्य) गतेरुपरि विपरीतप्रभावः पतति। ग्रहसम्बन्धिविचलनस्य परिमाणं प्रतिवर्षं 0.11 विकलात्मकं पूर्वाभिमुखमस्ति। ग्रहाणामाकर्षणस्य प्रभावः पृथिव्याः कक्षोपर्यपि पतति। अनेन कारणेनैव परमापक्रमकोणस्य मानं सम्प्रति प्रतिवर्षं अर्द्धविकलामितं न्यूनं लभ्यते। परन्तु मध्यमस्थानेन परमापक्रममानं □□1.5 अंशमितमेव अधिकतमं भवितुं शक्यते।[11] उपर्युक्तायनचलनं सर्वप्रथमं सूर्यस्यायननक्षत्रेषु क्रमशः पश्चिमविचलनं दृष्ट्वा ज्ञातमभवदतः "अयनचलनम्" इति नाम्ना प्रसिद्धम्। तत्र वार्षिकायनगतिः[12] = 50.2564।। $ 0.0222।। × काल अत्र काल = 1900 ईसाकालादनन्तरमार्तववर्षाणां शतकसंख्या। अनेन 2000 ईसाकालेऽयनचलनस्य गतिः = प्रायः 50.2786 विकलात्मिका।

अयनगतेः परिणामाः[13] - (1) राशिनाम-नक्षत्रमण्डलनाम्नोर्भेदो जातः। पुरा गणनारम्भे मेषराशि-मेषनक्षत्रमण्डलयोर्मध्ये किम्प्यन्तरन्नासीत्। तदा मेषारम्भः अश्विनीनक्षत्रस्यारम्भबिन्दुना सह भवति स्म किन्तु सम्प्रति अन्तरितं भूत्वा उत्तराभाद्रपदनक्षत्रस्यासन्नं भवति अर्थात् साम्प्रतिकसायनमेषराशिः मेषनक्षत्रमण्डले न वर्तते अपितु अयनचलनवशात् मीननक्षत्रमण्डले दृश्यते।

(2) ऋतवः शनैः शनैः परिवर्तन्ते। प्रतिवर्षं प्रायः 20 मिनट 24.5 सैकेन्डमितमन्तरेण ऋत्वारम्भः प्रागेव भवति। 72 वर्षेषु दिनैकमितमन्तरं भवति। अतः शनैः शनैः मासानां व्रतपर्वोत्सवादीनां च ऋतुभिस्सह सम्बन्धो न भविष्यति। तदा चैत्रमासे वर्षतुः भविष्यतीति।

(3) शनैः शनैः नूतननक्षत्रमण्डलानि दृश्यमानानि भविष्यन्ति यतः अयनचलनत्वान्नक्षत्राणां क्रान्त्यंशा अपि परिवर्तन्ते। यथा सम्प्रति 30 अंशाक्षांशवर्तिप्रदेशेषु दक्षिणध्रुवस्थानस्य समीपवर्तिनः तारकाः न दृश्यन्ते किन्तु प्रायः 12000 वर्षानन्तरं यदोत्तरध्रुवस्थानमभिजितः समीपे भविष्यति तदा 30 अंशाक्षांशवर्तिदेशेष्वपि आधुनिकदक्षिणध्रुवस्थानस्यासन्नवर्तिनः तारका अपि दृश्यमानाः भविष्यन्तीति।

(4) मेषसम्पातस्य चलनवशात् मेषसम्पातविषुवांशेषु क्रान्त्यंशेषु चाप्यन्तरं भवति। अतः मेषसम्पातमूलकनियामकसूच्यामपि कालान्तरे परिवर्तनं भविष्यति। अतः तत्र वार्षिकपरिवर्तन- संस्कारस्यावश्यकता भविष्यतीति।

पंचांगपत्रकेषु निरयणसायनयोः ग्राह्याग्राह्यत्वम् -तत्रोपर्युक्तपरिणामेषु प्रथमद्वितीयपरिणामयोः पंचांगपत्रकेष्वपरि प्रभावो भवति। यतः पंचांगेषु नक्षत्रानयनं सौरवर्षानयनं चावश्यकं भवति। अतः तत्र निरयणसायनयोर्मध्ये कः पक्षः ग्राह्यः? इत

---

[9] सूर्यसिद्धान्त विज्ञानभाष्य पृ. 242.246

[10] पंचांग सुधार समिति का प्रतिवेदन पृ. 400-401

[11] उद्धृतं सूर्यसिद्धान्त विज्ञानभाष्य पृ. 245

[12] पंचांग सुधार समिति का प्रतिवेदन पृ. 402

[13] अर्वाचीन ज्योतिविज्ञानम् पृ. 35-36

विषये प्राचीनकालत एव उभयोर्पक्षयोरभिमानिनः स्वपक्षस्य श्रेष्ठत्वं प्रतिस्थापयन्ति। अतः सर्वप्रथमं तेषां मतानां निष्पक्षरूपेणाध्ययनमावश्यकम्।

(क) निरयणमतम् - भारतवर्षे प्राचीनकालत एव निरयणपद्धतिः प्रचलिता दृश्यते। वैदिककाले संवत्सरस्यारम्भः 'फाल्गुनी पौर्णमासीतः'[14] लभ्यते एवमेव तत्र 'चित्रापूर्णमासी'[15] प्रभृतानि उदाहरणानि प्राप्यन्ते। वस्तुतः ''चन्द्रः तारात्मकचित्रानक्षत्रे फाल्गुनीनक्षत्रे वा पूर्णं भवतीत्यत्राभिप्रायः।'' अनेनैव मासानां चैत्रादियौगिकनामानि प्रचलितान्यभवन्। वेदांगकाले धनिष्ठारम्भे वर्षारम्भः स्वीकृतः[16] स तु निरयणमानानुसारमेवास्ति। अपि च प्राचीनसिद्धान्तग्रन्थेषूक्तवर्षमानानि निरयणमानस्य सन्निकटानि सन्ति। [17] निरयणपद्धतिस्वीकारेण प्रत्यक्षाकाशीयनक्षत्राणां प्रायः पंचांगोक्तनक्षत्रैस्सह सम्बन्धः समुपलभ्यते। यदि सायनमानं स्वीक्रियते तदा सम्पातस्य चलत्वात्तारात्मकदृश्यनक्षत्राणि प्रतिकूलानि (स्थानभ्रष्टानि) दृश्यमानानि भविष्यन्ति। निरयणपद्धत्यनुसारं 'चैत्रपूर्णिमायां प्रायः चन्द्रः चित्रानक्षत्रस्यासन्ने एव तिष्ठति' अतः तस्य मासस्य 'चैत्र' संज्ञेति एवमेव वैशाखादिमासानां संज्ञायामपि नक्षत्रविशेषेण सह चन्द्रस्य सम्बन्धः दृश्यते। यदि सायनमानं गृह्यते तदा चान्द्रमासानां चैत्रादिसंज्ञा अर्थरहिता भविष्यतीति। [18] सूर्यसिद्धान्ते 'अयनचलनमधिकतमं 27 अयनांशमितं दोलनगतित्वात् स्वीकृतमस्ति। [19] प्रायः 1800 सौरवर्षेष्वयनचलनस्य 27 अंशात्मकचलनं पूर्णं भवति। सम्प्रति प्रायः 24 अंशात्मकमयनचलनं लभ्यते। 27 अंशमिताः अयनांशाः सूर्यसिद्धान्तानुसारेण शाके 2221 अर्थात् प्रायः 3000 ईस्वीयाब्दे पूर्णाः भविष्यन्ति। [20] तदा सायननिरयणमानयोर्मध्ये अधिकतममन्तरं प्रायः एकमासमितमेव भविष्यतीति। तदनन्तरमयनांशाः पुनः न्यूनाः भविष्यन्ति। अतः निरयणपद्धतिस्वीकरणे न कापि विशिष्टा हानिरिति केचन विद्वांस आमनन्ति।

अयनचलनस्यान्दोलने युक्तिः - वेदेषु नक्षत्रारम्भः कृतिकानक्षत्राद्दृश्यते। अतः तस्मिन्काले सम्पातः कृत्तिकारम्भेऽर्थादारम्भस्थानात् (अश्विन्यारम्भतः) 26040। मितेऽन्तरे सम्भवति। वेदांगज्योतिषे उदगयनस्य प्रवृत्तिः धनिष्ठारम्भे निर्दिष्टाऽस्ति। अतः तस्मिन्काले सम्पातः प्रायः भरणीनक्षत्रस्य चतुर्थचरणारम्भे अर्थादश्विन्यारम्भतः 23020। मितेऽन्तरे तिष्ठति स्म। अनेनायनचलनस्य गति अश्विन्यारम्भस्थानादग्रे (पूर्वाभिमुखं) गत्वा पुनरावर्तनस्य दृश्यते। सम्प्रति सम्पातस्य गतिः पृष्ठे (पश्चिमाभिमुखं) दृश्यते। अतः तस्यापि पुनरावर्तनं भविष्यतीत्यनुमीयते। अनेन कारणेन 270 अयनांशाः अधिकतमाः दोलनात्मकगतित्वात् सूर्यसिद्धान्ते स्वीकृताः सन्ति।[21] यद्यपि द्वितीयार्यभटपराशरादिभि 240 मितमयनचलनस्य दोलनं स्वीकृतम्। [22] अयनचलनस्य दोलनात्मकगतेर्कारणं ब्रेनेड-विज्ञानानन्दप्रभृतिभिः महानुभावैः निम्नलिखितप्रकारेण व्यक्तीकृतम्[23] यथा चित्रे - उ व द श = क्रान्तिवृत्तम्, क = कदम्बस्थानम्, ध = उत्तरीध्रुवस्थानम् क ध द = अयनान्तवृत्तम्, प फ ध ब = ध्रुवस्थानस्य कदम्बं परितः परिभ्रमणवृत्त- मर्थादयनचलनेन विलोमगतिना ध्रुवपरिक्रमणवृत्तम्। दु एवं दू = क्रान्तिवृत्तस्य बिन्दू

दु द = दू द = 270 अन्तरम्, क ध = 240 (सूर्यसिद्धान्तानुसारम

---

14 श. ब्रा. 6/2/2/18

15 तै. सं. 7/4/8/2

16 द्र. याजुष ज्योतिष श्लोक 6.7

17 द्रष्टव्यं भा.ज्यो. (दीक्षित)पृ. 222 एवं सूर्यसिद्धान्तविज्ञानभाष्यभूमिका-महावीर प्रसाद पृ. 12

18 भा. ज्यो. (दीक्षित) पृ. 555-556

19 सू. सि. त्रिप्र0 श्लोक 9.11

20 भा. ज्यो. (दीक्षित) पृ. 441

21 भा. ज्योतिष (दीक्षित) पृ. 441

22 तत्रैव पृ. 444

23 उद्धृतं सू. सि. विज्ञानभाष्य पृ. 238

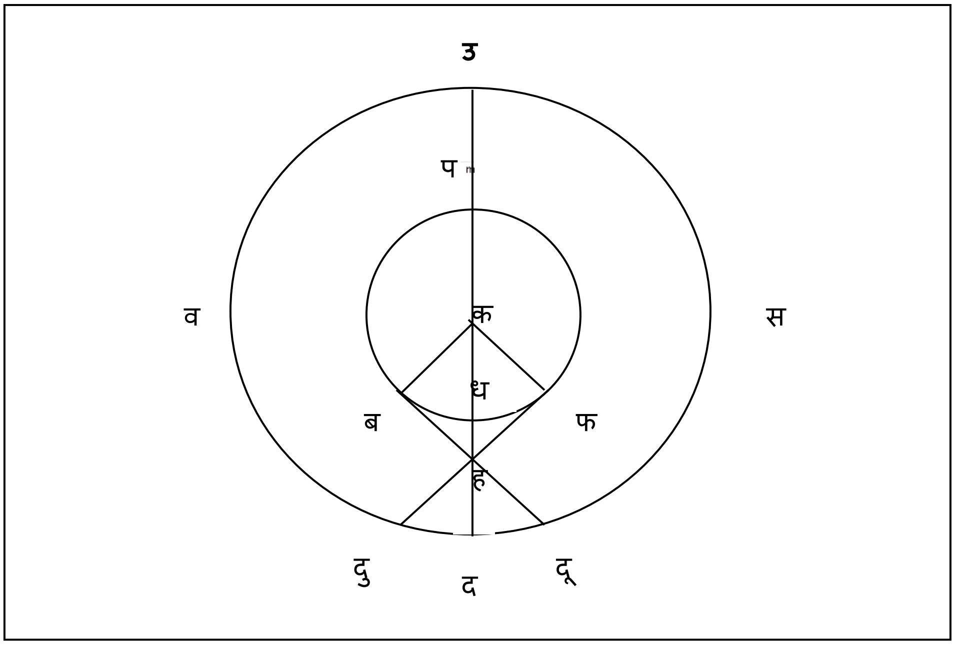


तदा दु एवं दू बिन्दुभ्यां क्रमशः फ एवं ब बिन्दवोरुपरि दू ब, दु फ स्पर्शरेखे कार्ये, ते परस्परे 'ह' बिन्दुं छिद्येते। तदा 'ध' बिन्दुः यावत्पर्यन्तं 'ध ब प फ' वृत्ते 3600 मितं चलति तावत्पर्यन्तकाले 'द' बिन्दुः स्वस्थानादर्थात् 'द' बिन्दुतः 'दू' पर्यन्तं गत्वा पुनः स्वस्थाने 'द' बिन्दौ आगत्य अग्रे 'दु' बिन्दुपर्यन्तं गत्वा पुनः स्वस्थाने 'द' बिन्दौ आगच्छति। अतः यावत्पर्यन्तं ध्रुवस्थानं कदम्बस्य 360 अंशात्मकं परिभ्रमणं पूर्णं करोति तावत्पर्यन्तं नक्षत्रचक्रं 'ह' बिन्दोः उभयपार्श्वे लोलकयन्त्रमिवान्दोलनं करोतीति दृश्यते।

(ख) सायनमतम् - सायनमानं यदा गृह्यते तदा "मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू..."[24] इत्यादि वेदवाक्यानुसारं यत्मासानामृतुभिस्सह सम्बन्धः प्रदर्शितः तत्सर्वदैव भवेत्। किन्तु निरयणमानं स्वीकारेण इदं न सम्भविष्यति। अमुकमासे अमुकऋतौ अमुककर्म करणीयमिति श्रुतिस्मृतिपुराणधर्मशास्त्रोक्तवचनानि सायनमानस्वीकारेणैव सिद्धानि भविष्यन्तीति।[25] अयनचलनत्वादृत्वारम्भोऽपि पृष्ठेऽपसर्पति। यदि निरयणपद्धतिः स्वीक्रियते तदा प्रायः 26000 वर्षेष्वेवैकस्मिन्नेव मासे क्रमशः सर्वे ऋतवः आगमिष्यन्ति अर्थात् चैत्रमासे साम्प्रतं वसन्तर्तुरस्ति किन्तु निरयणसौरवर्षेण प्रायः 4250 वर्षेषु ग्रीष्मर्तुः प्रायः 8500 वर्षेषु वर्षर्तुः प्रायः 17000 वर्षपश्चाच्च हेमन्तर्तुः भविष्यतीति। अतः ऋतुमासविपर्ययं दूरीकरणार्थं सायनसौरवर्षग्रहणमुचितम्।[26]व्रतपर्वोत्सवादीनामृतुभिस्सह सम्बन्धः धर्मशास्त्रेषु निर्दिष्टोऽस्ति। यदि निरयणमानं गृह्यते तदा वसन्तोत्सवः शीतकाले वर्षाकाले वा भविष्यति। प्रत्यक्षाकाशीयसूर्यस्थितिवशाद्दिनरात्र्योर्माने प्रायः 21 मार्चस्यासन्ने 22 सितम्बरस्यासन्ने च सममेव भवतः किन्तु निरयणमानेन सम्प्रति प्रायः 23 वा 24 दिनानन्तरमेव मेषसंक्रमणः तुलासंक्रमणश्च स्वीक्रियते। अतः प्रत्यक्षमेव दृकप्रतीतिः भवति किन्तु अस्माकं सिद्धान्तग्रन्थेषु दृग्गणितैक्यमावश्यकमिति कथितम् यथा - यस्मिन्देशे यत्रकाले येन दृग्गणितैक्यम् । दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्तिथ्यादिनिर्णयम्।।[27] अपि च निरयणपद्धति द्वारा निर्मितपंचांगेष्वेव "अयनांशाः" भिन्नाः भिन्नाः लभ्यन्ते किन्तु सायनमाने अयनांशनिर्णयस्यावश्यकता न भवति यतः तत्र

---

[24] तै. सं. 4/4/11

[25] द्रष्टव्यं भा. ज्यो. (दीक्षित) पृ. 552-555

[26] भा. ज्यो. पृ. 547.548

[27] वसिष्ठवचनमुद्धृतं विद्यापीठ पंचांग वि. सं. 2070 प्रस्तावना पृ. 2

अयनांशमानं स्वयमेव युक्तमस्ति। सम्प्रति न्यूटनकृत् व्याख्यया [28] स्पष्टमिदं यत्सम्पातस्य पूर्णभ्रमणं भविष्यति। अतोऽयनचलनस्य 'दोलनगतिसिद्धान्तस्य' खण्डनं भवति। अनेन निरयणपद्धतिस्वीकरणेनृतुमासविपर्ययं किंचित्कालादनन्तरं महत्वात् प्रत्यक्षमेव दृष्टिगोचरं भविष्यतीति। ऐतिहासिकदृष्ट्यापि सायनमतमेवोचितमिति दीक्षितमहोदयाः निर्दिशन्ति। तेषां कथनमस्ति यत्."प्रायः वैदिक काले सायन मानस्यैव प्रचलनं लभ्यते।...वेदांगकाले यद्यपि निरयणमानेन धनिष्ठारम्भे वर्षारम्भः स्वीकृतः दृश्यते तथापि तत्रोत्तरायणारम्भतः वर्षारम्भोऽपि लभ्यते।...अपि च वेदांगकालिकाधिकांशग्रन्थेष्वपि वसन्तारम्भ एव वर्षारम्भस्य वर्णनम्मिलति। अतः तस्मिन्काले प्रत्यक्षतः हेतुतो वा सायनवर्षमेव ग्राह्यमासीदिति। सूर्यसिद्धान्तमपि तत्त्वतः सायनमानमेवाभीष्टमासीत्।...ब्रह्मगुप्तेन सायनवर्षमेव मानितम्। .........यद्यपि प्राचीनैः स्वीकृतवर्षमानं सायनवर्षस्यापेक्षया निरयणवर्षस्यासन्नं वर्तते तथापि तेषामुद्देश्यं सायनमानस्य ग्रहणस्यैवासीदिति।" [29]

अनयोः मतयोः समीक्षणम् - निरयणमानं स्वीकरणात् मास-ऋतुविसंवादं तु भविष्यति किन्तु तारात्मकं नक्षत्रं शुद्धं भविष्यतीत्यनुमीयते। परन्तु व्योमनि सर्वाणि नक्षत्राणि समानान्तरे न विद्यन्ते अतः प्राचीनाचार्यैः क्रान्तिवृत्तं 27 समानभागेषु विभक्तम्। तत्र प्रत्येकं नक्षत्रप्रदेशमानं 13020' मितं स्वीकृतमस्ति। एषु नक्षत्रविभागेषु कुत्रचिदैकस्मिन्नैव नक्षत्रप्रदेशे द्वयोर्नक्षत्रयोः योगतारके आगच्छतः कुत्रचित् एकोऽपि योगतारको न लभ्यते।[30] अत आकाशे क्रान्तिवृत्तस्य विभाजनं पूर्णतया नक्षत्राणां स्थित्यनुसारं नास्ति। अपि च तारकाणां स्वनिजगतिर्भवति। यद्यपि तत्स्वल्पमेव दृश्यते परन्तु प्रायः 5000 वर्षानन्तरमुत्तराभाद्रपदनक्षत्रं विहाय सर्वे नक्षत्रयोगतारकाः स्वविभागेन भ्रंशाः भविष्यन्ति तदा पंचांगे अश्विनीनक्षत्रस्य चन्द्रेण सह समागम उल्लिखितो भविष्यति किन्त्वाकाशे भरणीनक्षत्रेण सह चन्द्रसमागमः भविष्यति। 7400 वर्षानन्तरमुत्तराभाद्रपद- नक्षत्रस्यापि एतादृशी स्थितिः भविष्यति। [31] अतः निरयणपद्धतिनापि तारात्मकं नक्षत्रमपि प्रत्यक्षाकाशे शुद्धं नास्ति। सायनमानस्वीकारेण यद्यपि मास-ऋतु-विसंवादो न भविष्यति तथापि तारात्मकं नक्षत्रमशुद्धं भविष्यति। यद्यप्युपर्युक्तविवेचनेन निरयणपद्धतिनापि तारात्मकं नक्षत्रमपि पूर्णरूपेण शुद्धं न सिद्ध्यति तथापि विभागात्मकनक्षत्रस्यासन्न एव प्रायः तारात्मकनक्षत्राणां स्थितिः संदृश्यते। परन्तु सायनमानेन सम्पातस्थितं प्रत्येकं नक्षत्रमेव "अश्विनीनक्षत्र' नाम्ना व्यवह्रितं भविष्यति। यथा-सायननिरयणनक्षत्रयोर्मध्ये परमान्तरं 13) नक्षत्राणिमितानि भविष्यति। अतः प्रायः 12000 वर्षानन्तरं यदा मेषसम्पातः (वसन्तविषुवः) निरयणचित्रानक्षत्रे भविष्यति तदा सायनमानेन निरयणचित्रानक्षत्रमेव "अश्विनी" नक्षत्रनाम्ना प्रसिद्धं भविष्यति।[32] परन्त्विदमपि प्रत्यक्षाकाशीयवेधानुकूलं न भविष्यति। भारतीय परम्परायां मासानां नामनिर्धारणन्तु पूर्णिमायां चन्द्रस्थितनक्षत्राणामाधारेण स्वीकृतमस्ति। यथा "यस्मिन्मासे चन्द्रः तारात्मकचित्रानक्षत्रे पूर्णो भवति स चैत्रमासः" इति।[33] निरयणपद्धतिना चैत्रमासे प्रायः चित्रानक्षत्रे तस्य निकटवर्तिनक्षत्रेषु वा पूर्णिमायां चन्द्रस्य स्थितिः सम्प्रत्यपि लभ्यते। एवमेवान्यमासेष्वपि तत्सम्बन्धिनक्षत्रस्यासन्न एव चन्द्रस्थितिः पूर्णिमायां प्राप्यते। परन्तु सायनमानेन परिभाषेयं व्यर्था भविष्यतीति प्रतीयते किन्तु "मेषादिस्थे सवितरि यो यो मासः प्रपूर्यते चान्द्रः। चैत्राद्यः स ज्ञेयः"[34] इत्यादि परिभाषानुसारं सम्प्रति चैत्रादिमासानां नामनिर्धारणं ज्ञायते यतः पूर्वोक्तमानेन चैत्रादिसंज्ञानां यौगिकपरिभाषा सम्प्रति सम्यक्तया न घटते। अतः यदि सायनमेषादिसंक्रान्त्यनुसारमपि मासनिर्धारणं क्रियते तदा मासानामृतूनां च सम्बन्धः सर्वदा स्थिरो भविष्यति। अयनचलनस्य पूर्णभ्रमो भविष्यति वा सूर्यसिद्धान्तोक्तं 270 अयनांशमितमेव दोलनात्मकभ्रमणं भविष्यतीत्यस्य ज्ञानन्तु भविष्यकाल एव भविष्यति। यदि दोलनगतिः सम्पातस्य प्राप्स्यते

[28] द्रष्टव्यं पंचांगसुधार समिति का प्रतिवेदन (हि. अनु.) पृ. 395

[29] भा. ज्यो. (दीक्षित) पृ. 548-549

[30] भा. ज्यो. (दीक्षित) पृ. 558

[31] तत्रैव पृ. 559

[32] भा. ज्यो. (दीक्षित) पृ. 556

[33] उद्धृतं तत्रैव पृ. 560

[34] उद्धृतं तत्रैव पृ. 511

तदा उभयोर्मानयोर्मध्ये प्रायः मासमितमेवान्तरं लप्स्यते किन्तुपूर्णभ्रमणे प्रायः 183 दिवसात्मकमन्तरमधिकतमं भविष्यति। अयनचलनस्य दोलनभ्रमे सति मास-ऋतूनां विपर्यस्यानुभवं प्रायः सामान्यजनाः न करिष्यन्ति परन्तु अयनचलनस्य पूर्णभ्रमे सति मास-ऋतूनां विपर्ययस्यानुभवमवश्यमेव जनाः करिष्यन्ति यतः तदा चैत्रमास एव वर्षर्तुः शरदृतुः वा भविष्यति। ततः व्रतपर्वोत्सवादीनामपि कालनिर्धारणे हास्यास्पदा स्थितिः भविष्यति। सम्प्रति सायनमानस्वीकार एकापत्तिः इयमस्ति यद्येषां कर्मणां सम्बन्धः ऋतु-मास-तिथिभिरेवास्ति, ते कदाचिदेकमासपूर्वमेव भवितुं शक्यन्ते परन्तु येषां कर्मणां सम्बन्धः ऋतु-मास-तिथिभिस्सह नक्षत्रेणाप्यस्ति तेषां निर्धारणे काठिन्यं भविष्यति। यथा 'विजयादशमी शरदृतौ आश्विनशुक्लदशम्यां' आगच्छति परन्तु तत्र 'श्रवणनक्षत्रस्य' योगमप्यपेक्षितम्। परन्तु यदि सायनमानं स्वीकृत्य सम्प्रति एकमासप्रागेव आश्विनमासं स्वीक्रियते तदा निरयणभाद्रपदमासे (सायनाश्विनमासे वा) शुक्लदशम्यां 'श्रवण' नक्षत्रस्योपलब्धिर्न भविष्यति। श्रवणनक्षत्रयुक्तदिवसे तदा दशमी तिथेरुपलब्धिः न भविष्यति।[35] तदा धर्मशास्त्रोक्तं 'श्रवणनक्षत्रयुक्ताश्विनशुक्लदशम्यां तिथौ विजयादशमीपर्वनिर्धारणं भवितुं न शक्यते। तदा किं धर्मशास्त्रमेव परिवर्तनीयम्? यदि 'आम्' तदा नूतनधर्मशास्त्रं किं जनाः स्वीकरिष्यन्तीति प्रश्न उत्पद्यते। सम्प्रतीदं न सम्भाव्यते। अतः विषयेऽस्मिन् व्यावहारिकदृष्टिकोणमप्यावश्यकम्। जातकस्कन्धदृष्ट्यापि विषयेऽस्मिन् विचारः आवश्यकः प्रतिभाति। भारतवर्षे प्रायः जन्मकुण्डल्याः निर्माणं निरयणमानेन भवति। तत्र लग्ननिर्धारणं ग्रहाणां स्थितिप्रदर्शनं चापि निरयणमानोपर्यवलम्बितमस्ति। निरयणमानावलम्बितजन्मकुण्डलीतः जातकस्य भूतभविष्यादिफलकथनं सम्यग्घटत इति विद्वांस उद्घोषयन्ति। प्रायः पाश्चात्यविद्वांसः सायनमानानुसारं जन्मकुण्डलीं विरच्य फलकथनं कुर्वन्ति। तेषामपि स्वफलकथनस्य सत्यतां प्रति न कोऽपि सन्देहः। अतः सायननिरयणमानयोर्मध्ये कः ग्राह्य इत्यत्रापि द्विविधा जायते। दीक्षितमहोदयस्य मतमस्ति यद्यदा उभयोर्मानयोर्मध्येऽन्तरमधिकन्नासीत्तदैवाधिकांशा जातकग्रन्थाः निर्मिता अभवन्। परन्तु ते सायनमानानुसारमेव विरचिता इति।[36] वस्तुतः विवादास्पदोऽयं विषयः। परन्तु सम्प्रति मुहूर्त्तादिनिर्णये जन्मकुण्डलीफलकथने प्रश्नलग्नादिनिर्माणे व्रतपर्वोत्सवादीनां च निर्णये निरयणमतमेव भारतवर्षे सर्वाधिकं प्रचलितमस्ति।

**निष्कर्षः -** उपर्युक्तविवेचनेन स्पष्टमस्ति यदुभयोर्पक्षयोरेव सदोषावस्था दृश्यते। यदि सायनमानं गृह्यते तदा नक्षत्राणां स्थितिः प्रत्यक्षाकाशीयस्थित्या सह साम्यं न धत्ते यदि निरयणमानं स्वीक्रियते तदा ऋतुविपर्ययं लभ्यते। अतः मध्यममार्गग्रहणमेवोचितम्। बापूदेव-केरोपन्त-तिलकप्रभृतयः विद्वांस यद्यपि सायनमानमेव शुद्धं स्वीकृतवन्तः[37] तथापि "यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयं नाकरणीय" मित्यनुसारं ते निरयणपंचांगमेव प्रकाशितवन्तः। दीक्षितमहोदया अपि सायनमतस्याभिमानिन आसन् परन्तु लोकस्थितिं दृष्ट्वा तैरपि चित्रापक्षीयनिरयणमानेन तत्समपक्षेन वा पंचांगनिर्माणस्य परामर्शः प्रदत्तः। पंचांगसुधारसमितिद्वारा स्वप्रतिवेदने सायनमतस्य समर्थनं कृतं परन्तु लोकमतं दृष्ट्वा भारतीयसर्वकारेण निरयणचान्द्रसौरपंचांगमेव स्वीकृतम्।[38] तदनन्तरमपि निरयणपद्धतिमेव पंचांगकर्त्तारः पण्डिताश्च स्वीकृतवन्तः।[39] अतः निरयणपद्धतिरेव सम्प्रति पंचांगनिर्माणार्थं ग्राह्येति स्पष्टमेव परन्तु निरयणपद्धतावपि शुद्धायनांशमानं तथा च शुद्धनक्षत्रसौरमानमेव प्रयोक्तव्यम्। पंचांगपत्रकेषु ऋतु-अयन-गोलानां चारम्भकालः सायनमानानुसारमेव भवेत्। तत्र सायनसंक्रान्तीनां कालोऽपि "सायनमेषसंक्रान्ति..." इत्यादि क्रमेण उल्लिखितो भवेत्। सम्प्रति व्रतपर्वोत्सवादिनिर्णये निरयणमानं स्वीकृतं भवितुं शक्यते, परन्तु पंचांगपत्रकेषु प्रत्येकं पक्षं पक्षारम्भकालस्य सूक्ष्मायनांशमानमवश्यमुल्लिखितं भवेत्। कालक्रमेण यदा सायननिरयणमानयोर्मध्ये महदन्तरं दृश्यमानं भविष्यति तदा विदुषां सम्मत्यनुसारं धार्मिकपक्षं व्यावहारिकपक्षं लोकमतं च दृष्ट्वैव विषयेऽस्मिन् निर्णये परिवर्तनं भवितुं शक्यते।

**असि.प्रो. ज्योतिषम् रा.सं.संस्थानम्, मानितवि.वि.भोपालपरिसरः,भोपालम्**

---

[35] भा. ज्यो. पृ. 570

[36] भा. ज्यो. (दीक्षित) पृ. 573

[37] द्रष्टव्यं तत्रैव पृ. 550

[38] द्रष्टव्यं भा. ज्यौ. पृ. 573-578

[39] द्रष्टव्यं 'अखिल भारतीय पंचांगकर्त्ता सम्मेलन 1994 प्रतिवेदने Calendar Reform in India

 ISSN – 2349-3100

# वैदिकाग्न्याधानमीमांसा-( प्रथमोभागः)

✍ प्रमोदवर्धनः कौण्डिन्न्यायनः

## १. वेदस्य धर्मज्ञापकत्वम्

धर्मस्य मोक्षस्य च यथार्थज्ञानस्य साधननमपौरुषेयं शास्त्रमेव भवितुं शक्नोतीति धर्ममीमांसकैर्निर्णितमस्ति । तच्च वेदशास्त्रमेव । वेदाः खल्वाज्ञानाऽल्पज्ञान-काम-क्रोध-लोभ-मोह-मात्सर्यादि-पुरुषदोषरहिता धर्मे मोक्षे च निरपेक्षप्रमाणभूता इति वैदिकरार्यैरादरेण तेषामध्ययनं क्रियते, येन त्रैवर्णिकानां द्विजत्वं सम्पाद्यते१। वेदस्वरूपरक्षयै वेदार्थप्रकाशनाय च शिक्षा-व्याकरण-निरुक्तानामङ्गानां रचना वेदविद्भिः कृता। वेदस्य यज्ञियं प्रयोगं दर्शयितुं कल्पशास्त्र-च्छन्दःशास्त्र-ज्योतिषशास्त्राणि प्रवृत्तानि। एवं वेदस्वरूपार्थ-प्रयोग-रहस्य-बोधनायर्षिभिर् मुनिभिश्च वेदाङ्गानां प्रणयनं कृतम्।

## २. वैदिकयज्ञाः

एतस्य चाऽनादिगुरुशिष्यपरम्परयाऽऽगतस्य२ तत्तच्छाखाध्यायिभिर्मात्रामात्रमप्यनपहाय-ऽपरिवर्त्याऽप्रक्षिप्य च सुमहता प्रयासेन ब्रह्मचर्येण त्यागेन तपसानुपाल्यमानस्य वेदस्य मूलं रहस्यं यज्ञस्वरूपे गर्भितं भूत्वा सुरक्षितं वर्तते। कर्मसु यज्ञः श्रेष्ठतमं कर्म मन्यते३।यज्ञः खल्वाधिभौतिकाऽऽध्यात्मिकपक्षैः युक्तोऽस्ति प्रजापतिप्रतिरूपश् चाऽस्तीति वेदवचनादेव ज्ञायते४। लौकिकं वैदिकं च प्रयोगं परिशील्य मीमांसाभाष्यकारेण शबरस्वामिना यज्ञस्यैव मुख्यं धर्मत्वं प्रतिपादितम् -

यो हि यागमनुतिष्ठति तं धार्मिक इति समाचक्षते। यश्च यस्य कर्ता स तेन व्यपदिश्यते, यथा पाचको लावक इति। तेन यः पुरुषं निःश्रेयसेन संयुनक्ति स धर्मशब्देनोच्यते। न केवलं लोके, वेदेऽपि यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि ' इति यजतिशब्दवाच्यं धर्मं समामनन्ति। ५'धर्माणि प्रथमान्यासन्इति६।

यस्यकस्याऽपि कृत्यस्य महत्त्वं दर्शयोतुं तस्य यज्ञरूपेण वर्णनं क्रियमाणं दृश्यते७। स्मृति-पुराण-महाभारतादिग्रन्थेषुऽपि विविधषु प्रसङ्गेषु यज्ञस्याऽनल्पो महिमा गीतः प्राप्यते। एतानाऽपि वैदिकयज्ञस्याऽनल्पं महत्त्वमत्यन्तमादरणीयत्वं च बोद्धुं शक्यम्। अत एव यज्ञविषयको विचारोऽत्यन्तमेव प्रशस्तो मन्यते। तस्मात् कारणात् तत्त्वदर्शिनो यज्ञविचारे रमन्ते इत्युक्तं प्राप्यते-

**यज्ञवित् सर्वविद् भवति यज्ञः सर्वमिति श्रुतिः।**
**तस्माद् याज्ञीषु चिन्तासु रमन्ते तत्त्वदर्शिनः॥८** इति॥

## ३. वैदिकयज्ञज्ञानाय मीमान्साशास्त्रस्यावश्यकता

वैदिकयज्ञरहस्यज्ञानाय चैतरेयिब्राह्मण-तैत्तिरीयब्राह्मण-शतपथब्राह्मणादि-ब्राह्मणग्रन्थानां गम्भीरमध्ययनमावश्यकं भवति। स्थूलस्य यज्ञयरूपस्य यथार्थरूपेण ज्ञानं चावश्यकं भवति। तादृशं ज्ञानं कल्पसूत्राध्ययनेन भवति। ब्राह्मणवाक्यमनुसृत्य कल्पसूत्रे प्रतिपादितेषु विषयेषु मध्ये येषु विषयेषु संशय उत्पन्नो भवितुं शक्नोति, तेषु विषयेषु ब्राह्मणगतविधिवाक्यस्याऽर्थादिकं विचार्य तदनुसारं न्याय्यस्य कल्पसूत्रोक्तस्य यज्ञप्रयोगमार्गस्य स्पष्टीकरणं समर्थनं च वाक्यशास्त्रं विचारशास्त्रम् अध्वरमीमांसाशास्त्रं तर्कशास्त्रं न्यायशास्त्रमित्यादिभिर्नामभिः व्यवह्रियमाणेन धर्ममीमांसाशास्त्रेण क्रियते। अत एव चेदं शास्त्रं कल्परूप-वेदाङ्गस्याऽनुगाम्युपाङ्गशास्त्रमप्युच्यते९। एवं च धर्ममीमांसाशास्त्रपरिशीलनेन ब्राह्मण-कल्पसूत्रादि-प्रतिपादितस्य यज्ञप्रयोगस्य न्याय्यत्वस्य बोधो भवति। अस्मिन् विषये मनुस्मृतावुक्तम्-

**आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राऽविरोधिना।**
**यस् तर्केणाऽनुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः१०॥**

अत्र तर्कशब्देन मीमांसाया ग्रहणम्। एतोनाऽन्यैः शास्त्रैर्यागादिरूपधर्मस्य सामान्यरूपेण सत्यपि तत्र संशय उत्पन्ने तस्य निर्विचिकित्सित-ज्ञानाय धर्ममीमांसाशास्त्रस्य आवश्यकता बवतीति स्पष्टं भवति।

**४. स्मार्ताधानम्**

मीमांसाशास्त्रे गृह्यसूत्राणां स्मृतित्वेन प्रामाण्यं साधितम्। तत्र वेदानुकूलाया अष्टकादिस्मृतेः धर्मे प्रामाण्यस्य स्थापना कृता; वेदविरुद्धायाः स्मृतेरप्रामाण्यं च प्रतिपादितम्११। केषां च न गृह्यकर्मणां विषये प्रासङ्गिको विचारोऽपि मीमांसाशास्त्रे विहितः प्राप्यते१२। गृह्याग्निरेव आवसथ्याग्निः, शालाग्निः, औपासदाग्निः, औपासनाग्निः, स्मार्ताग्निः, पाकाग्निः, वैवाहिकाग्निः इत्यपि कथ्यते१३। कस्यश्चिच् छाखायां विवाहाग्निरेव गृह्याग्निः भवति, कस्यश्चिच् छाखायामुपनयनाग्निरेव गृह्याग्निः भवति। जातारणिपक्षोऽप्यस्ति। तेषां पक्षाणामनाश्रयणे विवाहकाले दायद्यकाले वा अस्याऽग्नेराधानं कर्तव्यम्। तदशक्तौ प्रायश्चित्तं कृत्वा शुभे दिने गृह्याग्नेराधानं कार्यम्। बहुपशोः वैश्यस्य गृहादग्निमाहृत्य अरणिमन्थनं कृत्वा वा अग्निं प्रणीय विधिपूर्वकं गृह्याग्निः स्थापनीयं इति विधानं वर्तते१४। एतदेव गृह्याग्न्याधानमित्युच्यते। आश्वलायनीयानां यस्मिन्नग्नौ विवाहो भवति स एव गृह्याग्निः मन्यते। एषोऽग्निराजीवनं प्रज्वलितरूपेण रक्ष्यते। बौधायनधर्मसूत्रे तु श्रौताग्न्याधानपर्यन्तमेव गृह्याग्नौ कर्म कर्तव्यमित्युक्तमस्ति१५। केरलदेशस्थानां नम्पूतिरि(नम्बूदरि)ब्राह्मणानामेतादृशी परम्परा विद्यमानावगम्यते१६। एतस्मिन्नेवाऽग्नौ गृहस्थेन औपासनपरिचरणम् सनपरिचरणम् (सायम्प्रातर्होमः), पञ्चमहायज्ञाः (वैश्वदेवकर्म), पक्षादिकर्म, नवान्नप्राशनकर्म इत्यादयोऽनुष्ठीयन्ते। श्रौताग्न्याधानमकृतवन्तरस्तु पिण्डपितृयज्ञमपि अस्मिन्नेवाऽग्नौ कुर्वन्ति१७। सायम्प्राभोज्यमन्नमपि एतस्मिन्नेवाग्नौ पक्तव्यमिति पक्षोऽपि शास्त्रे वर्तते। अस्याऽग्नेराधानं गृहस्थस्य कृते अत्यन्तमेवाऽऽवश्यकमस्तीति शास्त्रमान्यता वर्तते१८। ये तु गृह्याग्निधारणेऽशक्तास्तेषां कृतेऽनुकल्पकाग्नेः विधानं शास्त्रे विद्यते।

कातीयाष्टादशपरिशिष्टान्तर्गते प्रसवोत्थानपरिशिष्टे यदग्निप्रसवविधानम् (पृष्ट्योदिदेव-विधानम्) तदपि गृह्याग्निधारणाक्षमाणां कृत एव वर्तते। शाखान्तरेषु स्मृतिषु चाऽपि एतादृशा अनुकल्पा उपलभ्यन्ते१९। गृह्याग्न्याधानरहितानां निन्दा त्वधिकारस्य धनस्य शक्तेश्च सत्त्वेऽपि आलस्येन लोभेन वाऽपि गृह्याग्न्याधानमकुर्वतामेवाऽस्तीति अवगम्यते२०। सामर्थ्याभावेन वा ज्ञानाध्ययननिष्ठादिना वाऽपि गृह्याग्न्याधानमकृतवन्तस्तु निन्दिता न भवन्तीत्यवगम्यते२१।

गृह्याग्न्याधानं कृतवद्भिर् वाजसनेयि-शुक्लयजुर्वेदशाखाध्यायिभिर् गृहस्थैर् यस्मिन् संवत्सरे अग्न्याधानं कृतं तस्मिन् संवत्सरे मासषोडशकावधि श्रवणाकर्मतः प्रारभ्य वृषोत्सर्गान्ताः पाकयज्ञा यथाकालमनुष्ठातव्याः, तदनुष्ठाने ते पापभाजो भवन्ति, तस्य दोषस्य निर्हरणाय प्रायश्चित्तं कर्तव्यमिति व्यवस्था वर्तते। तथा प्रायश्चित्तेऽनुष्ठिते गृह्याग्नेः पुनराधानं कृत्वा उक्ताः पाकयज्ञा यथाकालमनुष्ठेया इति वैक्रमाब्दानां त्रैयोदशस्य शतकस्य बङ्गदेशस्य शासकस्य लक्ष्मणसेनस्य धर्माधिकारी आवसथिको हलायुधः प्रतिपादयति२२। अतश्च आवश्यकनित्यपाकयज्ञानुष्ठाने समर्थैरेव गृह्याग्न्याधानं कर्तुमुचितं भवतीत्यवगम्यते।

**शेषम् अग्रीमे अङ्के..........**

**संन्दर्भसूची-।।**

1. (क) आचार्यो गर्भो भवति हस्तमाधाय दक्षिणम्।
तृतीयास्यां स जायते साविव्या सह ब्राह्मणः॥–माध्यन्दिन-वाजसनेयि-शतपथब्राह्मणे-११/५/४/१२
(ख)- आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद् वेदपारगः।
उत्पादयति साविव्या सा सत्या साऽजराऽमरा॥– मनुस्मृतौ-२/१४८

2. वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम्। वेदाध्ययनसामान्यादधुनाध्ययनं यथा॥–श्लोकवार्त्तिके- वाक्याधिकरणे, ३६६ श्लोके।

3. यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म॥–मा- शतपथब्राह्मणे १/७/१/५

4. क) स देवेभ्य आत्मानं प्रदायाऽथैतमात्मनः प्रतिमामसृजत यद्यज्ञं तस्मादाहुः प्रजापतिर्यज्ञ इति।–मा- शतपथब्राह्मणे-११/१/८/३

ख) आत्मा वै प्रजापतिः। इति च तत्रैव-४/५/९/२

5- ऋग्वेदसंहिता-१०/९०/१६, मा शुक्लयजुर्वेदसंहितायाम्- ३१/१६

6- जै ध मी सू शाबरभाष्ये- १/१/२,१८।

7- क) अथ ब्रह्मयज्ञः। स्वाध्यायो वा एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य वागेव जुहूर्, मन उपभृच्, चक्षुर् ध्रुवा, मेधा स्रुवः, सत्यवभृथः, स्वर्गो लोक उदयनं यावन्तं ह वा इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददल् लोकञ्जयति त्रिस्तावन्तञ्जयति भूयांसञ्चाक्षय्यं य एवं विद्वानहरहः स्वाध्यायमधीते तस्मात् स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। मा-शतपथब्राह्मणे- ११/५/६/३

ख) द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥
अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥– भगवद्गीयाताम्- ४/१८, १८/७०।

8.बौधायनगृह्यपरिभाषासूत्रे- २/५/२।

9. प्रतिपदमनुपदं छन्दोभाषा मीमांसान्यायस् तर्क इत्युपाङ्गानि।– कातीयचरणव्यूहसूत्रे- ६३ पृष्ठे।

10. मनुस्मृतौ- १२/१०६

11.जै ध मी सूत्र- १/३/१-३।

12द्र- जैमिनीयधर्ममीमांसाशास्त्रे स्मार्तकर्मविचारः, प्रमोदवर्धनः कौण्डिन्न्यायनः, ऋतम्भरा, १५ पू अ, ५४-६३ पृष्ठ।

13 गृह्यस्मार्तौपासनावसथ्यशालाग्नयस्तथा। पाकौपसदवैवाहिकाग्नयश्च समार्थकाः॥– वेदभाषानिघण्टौ भूलोककाण्डे, ब्रह्मवर्गे, १७८ श्लोके, १५ पृष्ठे।

14 पारस्करगृह्यसूत्रे- १/२/१-१३।

15भार्यादिरग्निः, तस्मिन् कर्मकरणं प्रागग्न्याधेयात्।– बौधायनधर्मसूत्रे- २/४/२२।

16. वैदिक धर्म मूल रूपमा' इत्याख्यो नैपालीयभाषामयो ग्रन्थो द्रष्टव्यः, ५२९ पृष्ठे।

17 यद्यपि कात्यायनश्रौतसूत्रस्य 'अनाहिताग्नेरप्येषः' इत्येतत् सूत्रं (४/१/३१) कर्कभाष्ये न प्राप्यते तथापि देवयाज्ञिकभाष्ये तु प्राप्यते। प्रसवोत्थानम्- परिशिष्टेऽपि अनुकल्पाग्नावपि पिण्डपितृयज्ञः कर्त्तव्य इति विधानं प्राप्यते। आश्वलायनशौतसूत्रे "एवमनाहिताग्निर् नित्ये" (२/७/१८) इति, गोभिल गृहसूत्रे "शालाग्नावनाहिताग्नेः" (४/४/७) इत्युक्तवा एषा व्यवस्था प्रतिपादितस्ति।

18 कृतदारो न तिष्ठेत क्षणमप्याग्निना विना।
यदि तिष्ठेद् द्विजो व्रात्यस्तथा च पतितो भवेत्॥ प्रथमयज्ञयपार्श्वे ३७ श्लोक।

19 औपासनं न वा धार्यमाणो ब्रह्मोदनं कृत्वोत्सृज्यकर्माणिकर्मण्येवैनं पुनः संस्कृत्याऽऽहरति। बौधायनगृह्यपरिभाषासूत्रे १/१०/७।

20. आलस्यादथवा लोभाद् योऽग्निं नाऽऽधातुमिच्छति।
न यजेत पाकयज्ञस्तु स याति नरकान् बहून्॥ प्रथमयज्ञयपार्श्वे ३९ श्लोक।द्र.- दक्षस्मृतिः २/३।

21. क) पितृपाकोपजीवी वा भ्रातृपाकोपजीवकः।
ज्ञानाऽध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताऽग्निना विना॥ गार्ग्यवचनम्, निर्णयसिन्धौ, २३६ पृ.।

ख) आश्वलायनगृहसूत्रे "विद्ययैवाऽप्यस्ति प्रीतिः" इति पक्षोवर्तते (१/१/५)

22. ब्राह्मणसर्वस्वे ९६ पृ.।

**पूर्व मीमांसा –तंत्र—विभागाध्यक्ष,वाल्मीकि विद्यापीठ,काठमाण्डु,नेपाल।**

# ग्रहस्वरूपविमर्शः-(पूर्वार्धम्)

✍ प्रो.हंसधरझाः

जगदिदं ग्रहाधीनमिति नाविदितं विज्ञैः। उक्तमपि – **ग्रहाधीनं जगत्सर्वम्** इति। ग्रहा इमे परमेशरस्यैव अवताराणि। यथोक्तममि महर्षिपराशरेण-

**अवतराण्यनेकानि ह्यजस्य परमात्मनः।**
**जीवानां कर्मफलदो ग्रहरूपी जनार्दनः।।**

स्पष्टं यद् ग्रहाः इमे साक्षात् परमात्मस्वरूपाः। अर्थात् परमात्मा एव विभिन्नेषु ग्रहरूपेष्वतीर्य संसारस्य शुभाशुभफलं व्यञ्जयति। यतो हि ग्रहा इमे साक्षात्परमात्मस्वरूपा अत एतेषु जीवानां कर्मफलदातृत्वं स्वाभाविकमेव। इमे हि परमात्मस्वरूपाः सूर्यादिनवग्रहा वर्ण-धर्म-स्वभावादिगुणानुरोधने राशि-नक्षत्र-षडवर्ग-दशवर्ग-षोडवर्गाद्यनुरोधेन, कक्षाद्यनुरोधेन च फलप्रदानेऽपि वैविध्यं भजन्ते। अतोऽस्माकमतीन्द्रियज्ञा ऋषयो ग्रहनक्षत्रविषयकं समग्रं ज्ञानं स्वदिव्यज्ञानबलेनानुसन्धाय अनल्पेऽस्मिन् ज्योतिषशास्त्रे तन्निगूहितवन्तः। एतेन स्पष्टमिदं यद् ग्रहाणां जगति जायमानानां प्रभावाणां ज्ञानार्थं तेषां वर्णधर्मस्वभावादीनां विस्तृतं ज्ञानं नितरामावश्यकम्। अस्मादेव कारणात् प्राच्यभारतीयज्योतिषग्रन्थेषु ग्रहस्वरूपविषयकं विस्तृतं विवेचनं विहितं प्राच्यैः। अर्थात् ग्रहस्वरूपादिविषयको विचारो ज्योतिषशास्त्रेऽत्र नूनमेव महत्त्वपूर्णः। मन्ये एतदेव महत्त्वमालक्ष्य प्रवर्तितायामस्यां संगोष्ठ्यां **ग्रहस्वरूपविमर्श** इति विषयो निर्धारितो विवेकिभिर्विपश्चिद्भिः। तदधुना अहमपि इममेव विषयमवलम्ब्य किमप्युपस्थापयितुं प्रवृत्तोऽस्मि।

अत्र ग्रहस्वरूपविवेचनक्रमे ग्रहस्य बिम्बविषयकः सामान्यः परिचयः, तस्य स्वाभाविकगुण-वर्ण-धर्मादयः, तस्य कक्षाविषयकं सामान्यं ज्ञानं, तस्य आत्माद्याधिपत्यं, राजत्वादिवचारस्तथा तस्य विविधपदार्थोपरि अधिष्ठातृत्वमित्यादिकं समासेन विविच्यते। तत्र किं चास्य ग्रहविषयक-वर्ण-गुण-धर्म-स्वरूपादिज्ञानस्य प्रयोजनं, प्रथमं तावत्तदेव विमृश्य ततः परं तेषां ग्रहाणां स्वरूपादिकं विमृशामः।

**(क) आत्मादिविचारस्य प्रयोजनम्**

चराचरञ्जगद् ग्रहमयमित्यत्र न सन्देहावसरः। यतो हि कालपुरुषस्य अङ्गानि द्वादशराशयो भवन्ति, तथा तेषां राशीनां स्वामिनो ग्रहा एव। अत्र कालग्रहणं कालपुरुषस्य सर्वगतत्वप्रदर्शनार्थमस्ति। अत्र न केवलं कालपुरुषस्य मेषाद्या राशयः शिरःप्रभृत्यङ्गविभागेन स्थिताः किन्तु सूर्यादयो ग्रहा जगत आत्मादिविभागेनापि स्थिता विधन्ते। यथा- **"कालात्मा दिनकृन्मनस्तु हिमगुः सत्वं कुजो ज्ञो वचः।** इत्यादि शास्त्रवचनानि प्रमाणभूतानि। किञ्चास्य आत्मादिविभागस्य प्रयोजनं किमित्यत्र द्रष्टव्यं सारावल्या वचनमिदम्

**आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः।**
**दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतं शनेः स्मृतम्।।**

अर्थात् सूर्यादीनां सबलत्वे जातकस्य आत्मादयो बलिनो भवन्ति, तेषां निर्बलत्वे आत्मादयो निर्बला भवन्ति। किन्त्वत्र केवलं शनैश्चरस्य विपरीतं ज्ञेयम्। यथा अग्रे शनैश्चरः कालपुरुषस्य दुःखं कथितम्। यदि जातकस्य जन्माङ्गे शनिः सबलस्तदा दुःखं न्यूनं किन्तु स निर्बलस्तदा दुःखमधिकं स्यादिति भावः।

**(ख) राजत्वादिविचारस्य प्रयोजनम्**

ग्रहेषु सूर्यचन्द्रादिग्रहा राजादयः कथिताः। तत्र – **"राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता"** शास्त्रोक्तानि वचनानि प्रमाणभूतानि। जन्मकाले प्रश्नकाले वा राजादिग्रहो यदि प्रबलो भवति, उपचयस्थो भवति तदा राजादिको जातकस्य प्रष्टुर्वा कार्यसाधको भवति। अन्यथा हानिकरः। एवमेवान्यत्रापि राजत्वादिविचारस्य प्रयोजनं चिन्तनीयम्।

 ISSN – 2349-3100

**(ग) ग्रहवर्णविचारस्य प्रयोजनम्**

**"रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दुः"** इत्यादि वचनैः जातकग्रन्थेषु ग्रहाणां वर्णाः प्रतिपादिताः। अर्थात् कस्य ग्रहस्य को वर्णो भवतीति प्रतिपादितं जातकशास्त्रे। जन्मकालिकबलवद्-ग्रहवर्णानुसारेण जातकस्य रक्तश्यामादिवर्णा भवन्ति। अथवा चौरादिवर्णज्ञानेऽपि ग्रहवर्णविचार उपयोगी भवति। यथा चोरप्रश्नविचारे प्रश्नकालिक बलबद्ग्रहस्य वर्णः चौरस्य वर्णः भवतीत्यादि।

**(घ) ग्रहाणां द्विजादिवर्णाधिपत्यस्य प्रयोजनम्**

ताम्रसितातिरक्तादीनां वर्णानां सूर्यादयो ग्रहाः स्वामिनो भवन्तीति - "**वर्णास्ताम्रसितातिरक्ते**" त्यादिवचनैःस्त्रेषूपदिष्टाः। एतच्च ग्रहवर्णाधिपत्यं हृतनष्टादिद्रव्यवर्णज्ञाने उपयोगि। अथवा ग्रहपूजायां तद्वर्णकुसुमैः पूजनं ग्रहतुष्ट्यै भवति। अतो ग्रहस्य वर्णाधित्यविचारोऽपि नितरां लोकोपयोगी एव।

**(ङ) ग्रहदेवताविचारस्य प्रयोजनम्**

**"बह्नयम्ब्वग्निजकेशवेन्द्रशचिकाः"** इत्यादिशास्त्रवचनैः सूर्यादिग्रहाणाम् अग्न्यादयो देवा उक्ता । ग्रहशान्तिकामनया ग्रहदेवतायाः पूजनं ग्रहशान्तिकरं भवति। अर्थाद् यस्य ग्रहस्य शान्तिः कर्तव्या तस्य यः देवः तत्पूजनेन ग्रहशान्तिर्जायते। यथोक्तमपि यवनेश्वरेण-

**देवा ग्रहाणां जलवह्निविष्णुप्रजापतिस्कन्दमहेन्द्रदेवाः।**
**चन्द्रार्कचान्द्र्यर्कजभौमजीवशुक्रांश्च यज्ञेषु यजेत शाश्वत्।।**

अपि च चौरनामज्ञानेऽप्यस्य उपयोगो भवति। यतो हि चौरप्रश्नकालिकबलबद्ग्रहदेवतापर्यायश्चौरस्य नाम भवति। अपि च ग्रहदेवतां सम्पूज्य तद्ग्रहदिशि गमनेन नरो निजगमनोद्देश्यं प्राप्नोति। यथोक्तमपि सारावल्याम्-

**पूर्वादिग्रहदेवांस्तन्मन्त्रैः समभिपूज्य तामाशाम्।**
**कनकगजबाहनादीन् प्राप्नोति नृपोऽरितः शीघ्रम्।।** इति।।

**(च) ग्रहाणां दिगाधिपत्यप्रयोजनम्–**

दिशाविशेषस्य ग्रहविशेषोऽधिपतिः कथितः। अर्थाच्चतुर्णां दिशां ग्रहाः स्वामिनो भवन्तीति - **"प्रागाद्या रविशुक्रलोहिततमस्सौरेन्दुवित्सूरयः"** इत्यादि वचनैः शास्त्रेषूदिष्टाः। हृतनष्टादिषु चौरादिगमनदिग्ज्ञाने ग्रहदिगाधिपत्यविचारो नितान्तमुपयोगी भवति। यतो हि चौरप्रश्नकालिकप्रबलग्रहो यस्या दिशोऽधिपतिर्भवति तस्यां दिश्येव चौरस्य गमनं भवति। एवं सूतिकागृहद्वारादिज्ञाने अपि दिगाधिपत्यं हि बहूपयोगि।

**(छ) ग्रहाणां शुभाशुभत्वप्रयोजनम्**

ग्रहेषु केचित् पापग्रहाः केचिच्च शुभग्रहा भवन्तीति - **"क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः"** इत्यादिवचनैः शास्त्रेषूपदिष्टाः सन्ति। जन्मनि पापग्रहबलाज्जातकः पापस्वभावस्तथा शुभग्रहबलाज्जातकः सौम्यस्वभावो जायते। मिश्रैश्च मिश्र इति। एवं जातकस्य स्वभावज्ञाने नितान्तमुपपयोगी ग्रहस्य शुभाशुभत्वविचार इति।

**(ज) ग्रहाणां पुरुषादिसंज्ञायाः प्रयोजनम्**

**'बुधसूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशिशुक्रौ युवती नराश्च शेषा'** इत्यादिवचनैः शास्त्रेषु स्त्रीपुरुषनपुंसकत्वं विवेचितम्। अर्थात् स्त्रीपुरुषनपुंसकभेदेन ग्रहास्त्रिविधाः भवन्तीति ज्योतिषशास्त्रस्य सम्मतम्। ग्रहलिङ्गानुगुणं हि चौरस्य लिङ्गं भवति। प्रबलग्रहानुगुणं हि जातकस्य स्वभावोऽथवा गर्भस्थजातकस्य लिङ्गं भवति। अतो ग्रहाणां पुंस्त्वादिविचारोऽपि उपयोगी एव।

**(झ) ग्रहाणां पञ्चतत्त्वाधिपत्यस्य प्रयोजनम्**

पञ्चमहाभूतानि हि पञ्चतत्त्वानि। तेषां पञ्चानामपि तत्त्वानां ग्रहा एव अधिपतयः। तत्र हि **"शिखिभूकपयोमरुद्गणानां वशिनो भूमिसुतादयः क्रमेण"** इत्यादिवचनानि प्रमाणभूतानि। ग्रहाः स्वदशायां महाभूतकृतां छायां व्यञ्जयन्ति। किं वा ग्रहानुगुणं जातकस्य तत्त्वविशेषः भवति।

 ISSN – 2349-3100

**(ञ) ग्रहाणां ब्राह्मणादिवर्णाधिपत्यप्रयोजनम्**

ग्रहाणां ब्राह्मणादिवर्णेष्वपि आधिपत्यं भवतीति **"विप्रादितः शुक्रगुरू कुजार्कौ शशी बुधश्चेत्यसितोऽन्त्यजानाम्"** इत्यादि वचनैः शास्त्रेषु प्रतिपादिमस्ति। हृतनाष्टादिषु ग्रहबलाच्चौरादीनां ग्रहोक्तवर्णा भवन्ति। जयपराजयविचारे, कार्यसहायकासहायकादिविचारे, लाभालाभविचारे सर्वत्रैव ग्रहबलानुगुणं तद्वर्णा जनाः सहायका बाधका वा भवन्ति। यथोक्तमपि सत्याचार्येण–

**गुरुशुक्रौ रविरक्तौ चन्द्रः सौम्यः शनैश्चरश्चेति।**
**विप्रक्षत्रियविट्शूद्रसंकराणां प्रभुत्वकराः।।**
**अजये जयेऽथ तुष्टावप्रीतौ वित्तनाशे लाभे।**
**तेभ्यस्तेभ्यः कुर्युर्गुणांश्च दोषांश्च पक्षांस्तान्।।** इति

अतो वक्ष्यमाणं ग्रहाणां विप्रादिवर्णकथनमपि ज्योतिषीयविचारे उपयोगि एव।

**(ट) ग्रहाणां सत्त्वरजस्तमोविभागप्रयोजनम्**

ग्रहा इमे सत्त्वरजस्तमोगुणविशिष्टा भवन्ति। तत्र **"चन्द्रार्कजीवा ज्ञसितौ कुजार्की यथाक्रमं सत्त्वरजस्तमांसि"** इत्यादिवचनैः शास्त्रेषु तेषां सत्त्वरजस्तमोमयत्वं स्पष्टीकृतम्। अर्थात् ग्रहेषु चन्द्रार्कजीवाः सात्विकाः, ज्ञसितौ राजसौ तथा कुजार्की तामसाः सन्ति। एतज्ज्ञानेनापि सात्त्विकादिगुणानुसारम् चौरस्य निर्णयः विधीयते। जातकस्य प्रकृतिः अपि सात्विकी, राजसी, तामसी वेति वक्तुं शक्यते। यथोक्तमपि भट्टोत्पलटीकायाम् –

**सत्त्वं रजस्तमो वा त्रिंशांशे यस्य भास्करस्तादृक्।।** इति

तत्रैव श्रीदेवकीर्तिवचनम् – "**बलवद्भिस्तद्गुणो भवेज्जातः**" ।। इति

**शेषम् अग्रीमे अङ्के..........।**

**संन्दर्भग्रन्थ-सूची**

[1] बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्, अवतारक्रमवर्णनाध्यायः, श्लो.3

[2] बृहज्जातकम् 2/1

[3] लघुजातकम् 2/2, सारावली, 4/2

[3] बृहज्जातकम् 2/1

[4]बृहज्जातकम् 2/4

[5] बृहज्जातकम् 2/5

[6] बृहज्जातकम् 2/5

[7] बृहज्जातकम् 2/5 भट्टोत्पलः

[8] बृहज्जातकम् 2/5 भट्टोत्पलः

[9] बृहज्जातकम् 2/5

[10]बृहज्जातकम् 2/5

[11] बृहज्जातकम् 2/6

[12]बृहज्जातकम् 2/6

[13]बृहज्जातकम् 2/7

[14]बृहज्जातकम् 2/7 भट्टोत्पलः

[15]बृहज्जातकम् 2/7

 ISSN – 2349-3100

# कालचक्रदशा

✍ रामस्वामि शास्त्री

ग्रहस्थितिगतिवशाज्जातस्य भूतभव्यवर्तमानफलकथनं जातकस्य स्वरूपम् | तत्राऽपि दृढ-अदृढ-दृढाऽदृढ प्रभेधेन विभक्तसु कर्मसु दृढकर्मणां फलविपाकस्य कालज्ञानं तु दशान्तर्दशाविचारेणैव भवति । पराशरमहर्षिणा त्रिंशदधिका दशाविधयो दत्ताः । जैमिनिप्रभृतिभिरपि अन्याश्च विविधाः दशाः उपदिष्टा: । एतासु मुख्यतया चतस्रः ज्यौतिषिकानां नित्योपयोगे वर्तन्ते –
१. विंशोत्तरी दशा २. अष्टोत्तरी दशा ३. कालचक्रदशा ४. योगिनी दशा । अत्र कालचक्रदशापद्धत्यामपि दशान्तर्दशाक्रमेण फलादेशो वर्तते, किन्तु प्रामुख्येन तत्प्रयोजनं तु जातस्य जीवनेऽरिष्टाणां ज्ञाने भवति ।

**कालचक्रदशानयनम्-**कालचक्रदशा राश्यधिष्ठिता दशा भवति । जन्मकालीन चन्द्राधिष्ठित नक्षत्रचरणमेव तद्गणितस्याधारः । अश्विनीप्रभृतीनां नक्षत्राणां दक्षिणहस्तकनिष्ठिका - अनामिका - मध्यमा - वामहस्तकनिष्ठिका -अनामिका - मध्यमा इति क्रमेण गणना कार्या । तेन –

| अङ्गुलिः | नक्षत्राणि | वृन्दम् | वर्गः |
|---|---|---|---|
| दक्षिणकनिष्ठिका | अश्विनी, पुनर्वसुः, हस्तः, मूलम्, पूर्वाभाद्रपदा | अश्विनीवृन्दम् | अश्विनीवर्गः |
| दक्षिणानामिका | भरणी, पुष्यः, चित्रा, पूर्वाषाढा, उत्तराभाद्रपदा | भरणीवृन्दम् | भरणीवर्गः |
| दक्षिणमध्यमा | कृत्तिका, आश्रेषा, स्वाती, उत्तराषाढा, रेवती | कृत्तिकावृन्दम् | अश्विनीवर्गः |
| वामकनिष्ठिका | रोहिणी, मघा, विशाखा, श्रवणम् | रोहिणीवृन्दम् | रोहिणीवर्गः |
| वामानामिका | मृगशिरः, पूर्वा फल्गुनी, अनुराधा, धनिष्टा | मृगशिरोवृन्दम् | मृगशिरोवर्गः |
| वाममध्यमा | आर्द्रा, उत्तरा फल्गुनी, ज्येष्ठा, शतभिषक् | आर्द्रावृन्दम् | मृगशिरोवर्गः |

एतेषु दक्षिणहस्तस्थानि सव्यनक्षत्राणि तथा वामहस्तस्थानि अपसव्यनक्षत्राणि इति कथ्यन्ते । पुनः अश्विनीकृत्तिकावृन्दे मिलित्वा अश्विनीवर्ग इति कथ्येते । भरणीवृन्दमेव भरणीवर्गः । रोहिणीवृन्दमेव रोहिणीवर्गः । मृगशिराऽर्द्रा वृन्दे मिलिवा मृगशिरोवर्गः इति कथ्येते ।अश्विनीभरणीरोहिणीमृगशिरोवर्गाणां प्रत्येकं चतुर्णां चरणानां दशाक्रमाः एवं भवन्ति ।

अश्विनी वर्गः चरणम् १

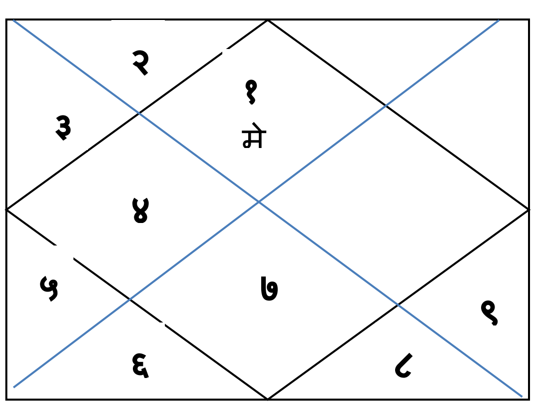


अश्विनी वर्गः चरणम्

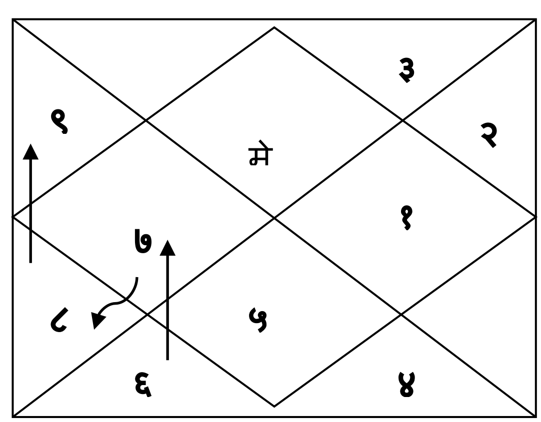

अश्विनी वर्गः चरणम् ३

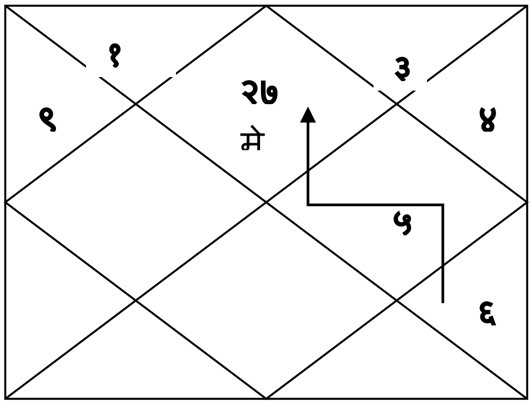


अश्विनी वर्गः चरणम् ४

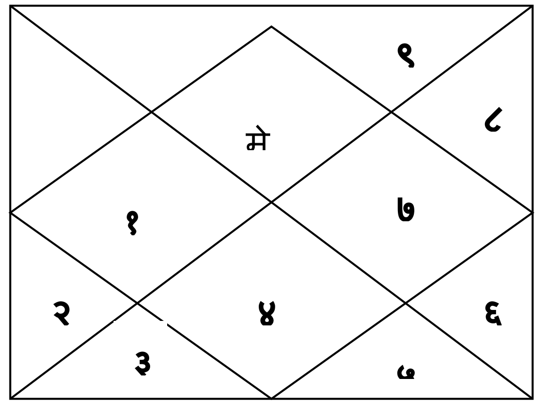


भरणी वर्गः चरणम् १

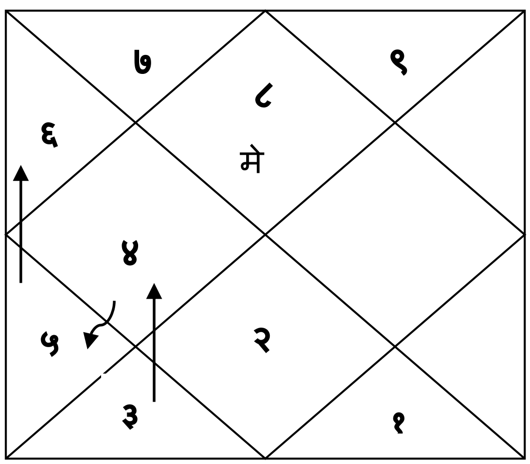


भरणी वर्गः चरणम् २

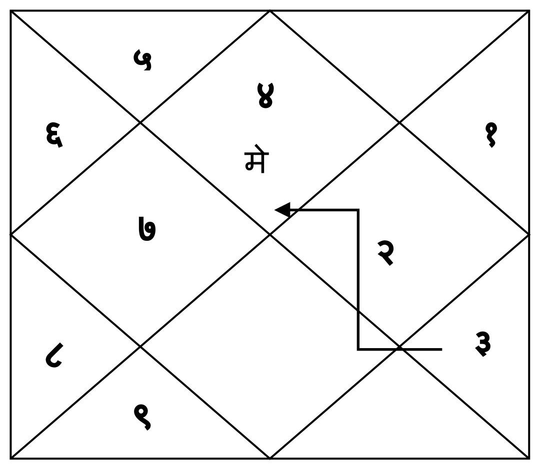


भरणी वर्गः चरणम् ३

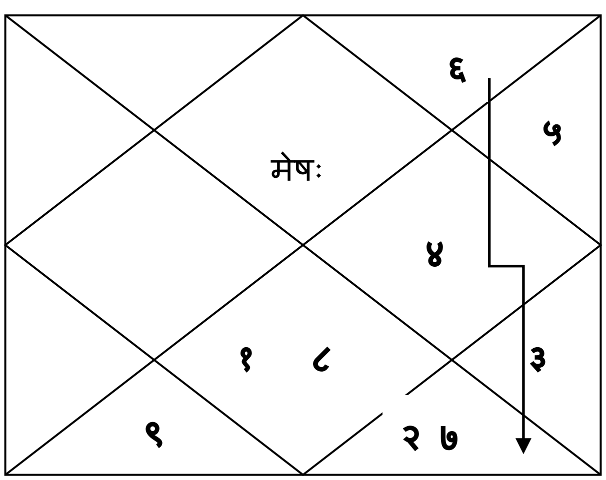


भरणी वर्गः चरणम् ४

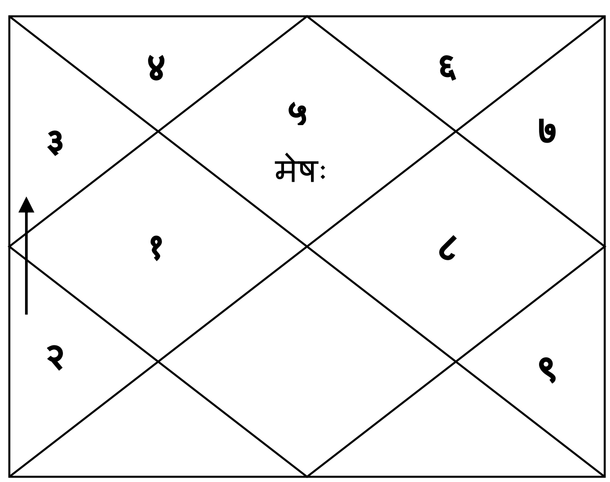

 ISSN – 2349-3100

रोहिणी वर्गः चरणम १ रोहिणी वर्गः चरणम २

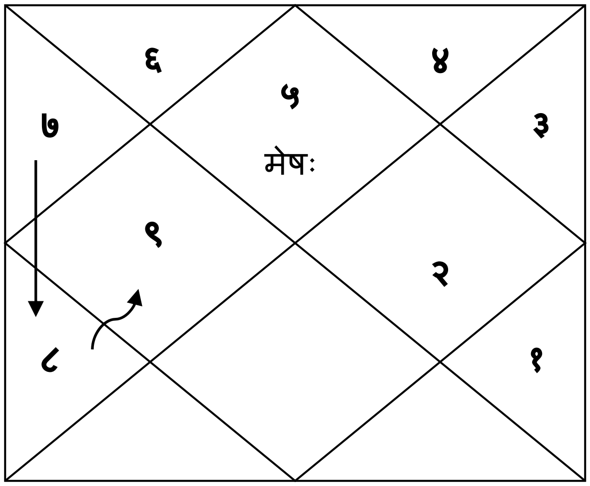


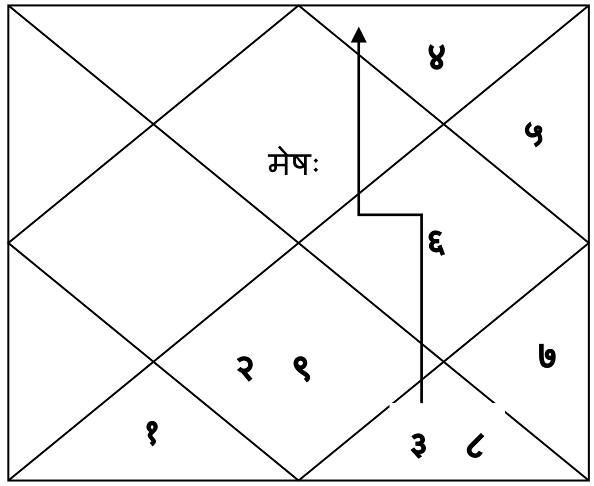


रोहिणी वर्गः चरणम ३ रोहिणी वर्गः चरणम ४

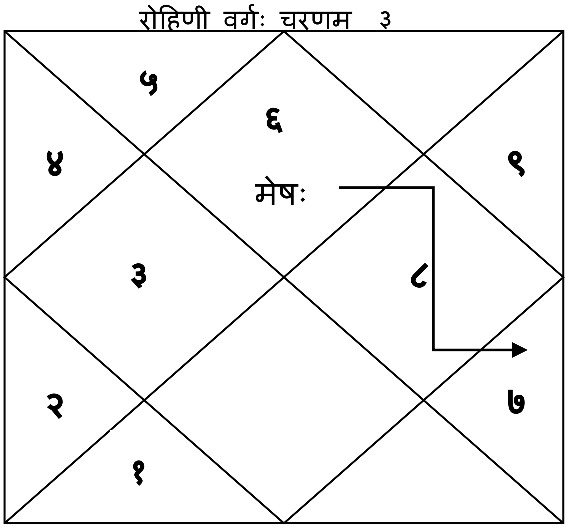


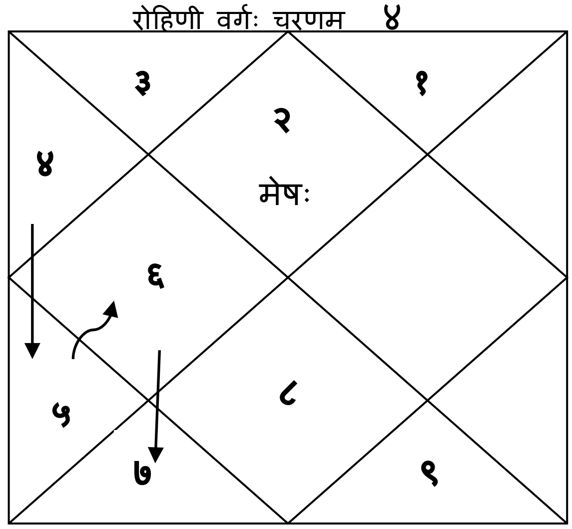


मृगशिरो वर्गः चरणम् १ मृगशिरो वर्गः चरणम् २

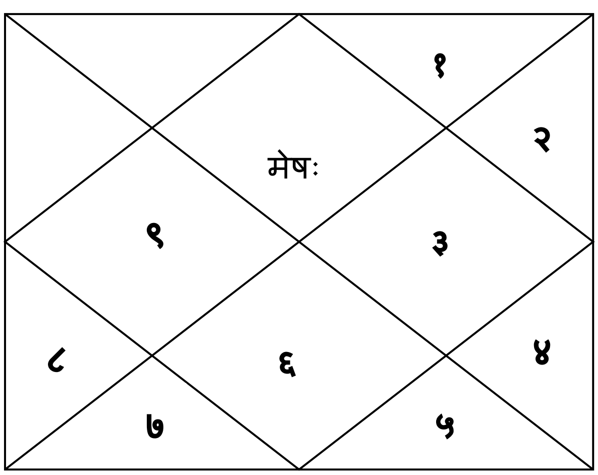


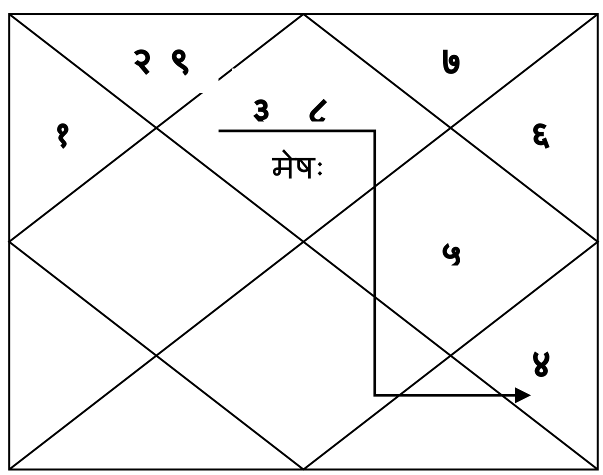

 ISSN – 2349-3100

उदाहरणेन भरणीवर्गस्य दशाक्रमः कर्क - सिंह - मिथुन -वृष - मेष - मीन - कुम्भ - मकर - धनुः इति भवति।
अत्र अश्विनीभरणीवर्गौ परस्परं दर्पणप्रतिबिम्बौ भवतः। रोहिणीमृगशिरोवर्गौ परस्परं दर्पणप्रतिबिम्बौ भवतः।

**देहजीवराशौ**

सव्यनक्षत्रेषु प्रथमा दशा यस्य राशेः स देहराशिरिति कथ्यते तथा अवसानीया दशा यस्य स जीवराशिरिति कथ्यते।अपसव्यनक्षत्रेषु व्यत्ययेन ग्राह्यः। अनयोः पापग्रहाणां स्थितिः आधिव्याधिरोगमरणादिकं अनिष्टं सूचयति। पापानां बहुत्वे दोषाधिक्यमपि। सूर्येण अग्निभयं क्षीणचन्द्रेण जलभयं भौमेन परिघातभयं पापेन बुधेन झञ्झावातादिभयं मन्देन गुल्मादिवातरोगभयं राहुकेतुभ्यां विषभयं च वाच्यम्। शुभैः रोगशोकादिशमनं तथा शुभाशुभसम्मिश्रैर्मिश्रफलं वाच्यम्। देहजीवौ शुभक्षेत्रं वा पापक्षेत्रं इत्यनुसारेणापि फलं शुभं वा अशुभं भवति। एतानि फलानि स्वदशान्तर्दशाकाले अनुभूयन्ते

## कालचक्रदशानुसारेण नवांशफलम्

नवांशनयनाय सारिणी तत्फलञ्च

| नक्षत्रचरणम् | नवांशः | तत्फलम् |
|---|---|---|
| अश्विनी वृन्दम् (१), मृगशिरो वृन्दम्(४) | मेषः | शूरः, चोरः |
| अश्विनी वृन्दम् (२), मृगशिरो वृन्दम्(३) | वृषः | लक्ष्मीवान् |
| अश्विनी वृन्दम् (३), मृगशिरो वृन्दम्(२) | मिथुनम् | ज्ञानी |
| अश्विनी वृन्दम् (४), मृगशिरो वृन्दम्(१) | कर्कः | नृपतिः |
| भरणी वृन्दम् (१), रोहिणी वृन्दम् (४) | सिंहः | राजमान्यः |
| भरणी वृन्दम् (२), रोहिणी वृन्दम् (३) | कन्या | पण्डितः |
| भरणी वृन्दम् (३), रोहिणी वृन्दम् (२) | तुला | राजमन्त्री |
| भरणी वृन्दम् ४), रोहिणी वृन्दम् (१) | वृश्चिकः | निर्धनः |
| कृत्तिका वृन्दम् (१), आर्दा वृन्दम् (४) | धनुः | ज्ञानसम्पन्नः |
| कृत्तिका वृन्दम् (२), आर्दा वृन्दम् (३) | मकरः | पापकृत् |
| कृत्तिका वृन्दम् (३), आर्दा वृन्दम् (२) | कुम्भः | वणिक्कर्मा |
| कृत्तिका वृन्दम् (४), आर्दा वृन्दम् (१) | मीनः | धनधान्यवान् |

**मण्डूकी–मर्कटी गती सिंहावलोकनं तत्फलञ्च-** एकान्तरदशागमनं मण्डूकी गतिरिति कथ्यते यथा – अश्विनीवर्गस्य द्वितीये चरणे अपसव्यक्रमेण कन्यायाः परं यत् सिंहराशिरागन्तुमर्हति तत्स्थाने कर्कराशिरागचछति |प्रतीपगमनं मर्कटीगतिरिति कथ्यते यथा रिहिणीवर्गस्य चतुर्थे चरणे सिंहात्परं सव्ये क्रमः कन्यासथाने विपरीतं कर्कं प्रति गच्छति | भरणी चतुर्थचरणं परिहाय अन्यत्र यत्र यत्र मण्डूकीगतिर्भवति तत्र तत्र तत्पश्चात् मर्कटीगतिश्च भवत्ये स्वस्थानात् पञ्चमनवमौ प्रति गमनं सिंहावलोकनम् |

**सव्यनक्षत्रेषु मण्डूकी गतिः** - पित्रोर्वा बान्धवेषु भयं – विषशस्त्राग्निचोरादिभयम् | तत्राऽपि सिंहान्मिथुनं प्रति गमने – मातुर्मरणं – स्वमरणं – राजभीतिः - सन्निपातरोगः | सव्यनक्षत्रेषु मर्कटीगतिः – पित्रोर्वा पितृसमानस्य मरणं – धनदान्यपशुक्षयः – आलस्यम् | सव्यनक्षत्रेषु सिंहावलोकनं - पशुभीतिः – मित्रैः कलहः – कूपादौ पतनं – वाहनात् पतनं – विषाग्निशस्त्रभयं – ज्वरः –स्थानच्युतिः | वामनक्षत्रेषु मण्डूकीगतिः – भार्यापुत्रादिभ्यः पीडा – पशुभयं – ज्वरः – स्थाननाशः | वामनक्षत्रेषु मर्कटीगतिः – जलभीतिः – पितुर्नाशः – राजकोपः – पदच्युतिः – दुर्गारण्येषु अटनम् |वामनक्षत्रेषु सिंहावलोकनम् – स्थानभ्रंशः – पित्रोर्वा पितृसमानस्य मरणं |

ISSN – 2349-3100

**दशाकालमानम् (पूर्णम् )**

| | | | |
|---|---|---|---|
| अश्विनी वर्गः १ | १०० वर्षाणि | भरणी वर्गः १ | १०० वर्षाणि |
| अश्विनी वर्गः २ | ८५ वर्षाणि | भरणी वर्गः २ | ८५ वर्षाणि |
| अश्विनी वर्गः ३ | ८३ वर्षाणि | भरणी वर्गः ३ | ८३ वर्षाणि |
| अश्विनी वर्गः ४ | ८६ वर्षाणि | भरणी वर्गः ४ | ८६ वर्षाणि |
| रोहिणी वर्गः १ | ८६ वर्षाणि | मृगशिरो वर्गः १ | ८६ वर्षाणि |
| रोहिणी वर्गः २ | ८३ वर्षाणि | मृगशिरो वर्गः २ | ८३ वर्षाणि |
| रोहिणी वर्गः ३ | ८५ वर्षाणि | मृगशिरो वर्गः ३ | ८५ वर्षाणि |
| रोहिणी वर्गः ४ | १०० वर्षाणि | मृगशिरो वर्गः ४ | १०० वर्षाणि |

**राशीनां दशामानम्**

| | | | |
|---|---|---|---|
| मेषः | ७ वर्षाणि | तुला | १६ वर्षाणि |
| वृषः | १६ वर्षाणि | वृश्चिकः | ७ वर्षाणि |
| मिथुनम् | ९ वर्षाणि | धनुः | १० वर्षाणि |
| कर्कः | २१ वर्षाणि | मकरः | ४ वर्षाणि |
| सिंहः | ५ वर्षाणि | कुम्भः | ४ वर्षाणि |
| कन्या | ९ वर्षाणि | मीनः | १० वर्षाणि |

**प्रथमदशानयनम्**

अत्र द्वौ मतभेदौ वर्तेते |

१.नक्षत्रचरणे यातांशानुपातेन पूर्णदशामाने त्रैराशिकं कृत्वा गतदशाः निर्णीतव्याः | जन्मकाले यद्दशा तस्याः भोग्यमानमारभ्य अग्रे दशाः गणनीयाः |

२. नक्षत्रचरणे यातांशानुपातेन प्रथमदशामाने एव त्रैराशिकं कार्यम् | प्रथमदशायाः भोग्यमानमारभ्य अग्रे दशाः गणनीयाः | नवमदशावसाने पुनः आरम्भतः चक्ररीत्या गणना कार्या |

**दशान्तर्दशाफलानि**

पाराशरहोरायां द्रष्टव्यानि | अत्र विशेषः – फलानि नवांशानुसारेण दत्तानि | पूर्वोक्तरीत्या ( सारिणी द्रष्टव्या ) नक्षत्रचरणानुसारेण नवांशः निर्णीतव्यः |

## संन्दर्भग्रन्थ-सूची

1.लघुजातकम्

2. सारावली

3. लघुपाराशरी;

4. वृहत्पराशरहोराशास्त्रम्

5.बृहत्संहिता

6ज्योतिषश्यामसंग्रह; 12/337.

7.ज्योतिष शास्त्र का इतिहास

8. बृहजातकम्

9 सर्वार्थचिंतामणि

 ISSN – 2349-3100

# नवरात्रोपासना एवं सांस्कृतिक एकता

✍ प्रो.(श्रीमती) प्रभादेवी चौधरी

**कलौ चण्डी विनायकौ** के अनुसार चण्डी दुर्गा एवं विनायक गणेश की प्रधानता सिद्ध है।इसमें सर्वप्रथम दुर्गा धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष, चतुर्विध पुरुषार्थ को प्रदान करनेवाली है।इसमें प्रायौगिक स्तर पर उस मार्ग का संकेत किया गया है जिससे व्यक्ति को जगन्माता की कृपा प्राप्त होती है, जो सभी सांसारिक अभीष्ट पदार्थों को प्राप्त करने वाली शक्ति है। महर्षि अरविन्द ने अपने तन्त्र सम्बन्धी लेख में लिखा है –

**The worship of energy. The shakti as a rle effective force for all attainment**.

अखिलब्रह्माण्ड नायिका मातेश्वरी दुर्गा परमेश्वर की उन प्रधान शक्तियों में से एक है जिसका समय-समय पर अपनी आवश्यकता- अनुसार प्रकटित कर परब्रम्हा परमात्मा ने विश्व का कल्याण किया है ।यथा-

**एकैव शक्ति परमेश्वरस्य, भिन्ना चतुर्धा व्यवहार काले।**

**पुरूषेषु विष्णुर्भोगं भवानी, समरे च दुर्गा प्रलये च काली।।**

इसकी अराधना उपासना मनुष्य श्रद्धा भक्ति पूर्वक **यं यं कामं तं प्रप्नोति निश्चितम्** के अनुसार जिस कामना से इस कामना से जिस कामना से जिस वस्तु की इच्छा करता है,अल्पप्रयास से ही उसकी अवश्य सिद्धि होती है।इसके पाठ पूजन एवं अनुष्ठान आराधना द्वारा की कृपा से मनुष्य की सिद्दियाँ हस्तामलक हो जाती है।

शाक्तोपासना का मूल ऋग्वेद के वागृम्भणी सूक्त में ही उपलब्ध होता है जिसे देवी सूक्त कहा गया है।दुर्गासप्तशती में इसका उल्लेख किया गया है सुरथ एवं समाधि दोनों ने अपनी आराधना,उपासना में देवी सूक्त का जप किया था। देवी सूक्तं परं जपंन् रुद्रयामल तन्त्र में बताया गया है कि देवी महात्म अति रहस्यपूर्ण और सभी सिद्धियों को देने वाली है-

**अतिगुह्यतमं देव्या महात्म्यं सर्वसिद्धिदम्** कहा गया है।

मानव जीवन में चार पुरूषार्थ कहे गये हैं -धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष।मनुस्मृति को मानव धर्मशास्त्र कहा है,दुर्गामहात्म्य अर्थ का शास्त्र है,वात्स्यायन प्रणीत कामसूत्र काम का शास्त्र है,गीता मोक्ष का शास्त्र है। दुर्गासप्तशती का अर्थ का शास्त्र कहने का तात्पर्य है कि संसार में अर्थ पदार्थ कहे जाने वाले जो भी संग्रहणीय और अभीलषणीय हो सकते हैं वे शक्ति की आराधना,जगदम्बा की उपासना से प्राप्त होते है।दुर्गासप्तशती में हमारे सामने दो व्यक्ति उपस्थित है राज्यच्युत सुरथ और परिवार से निष्कासित समाधि।कथानक को तो एक  भी देवता की अराधना से सांसारिक सुखोपभोग अथवा मोक्ष की प्राप्ति की कामना की जा सकती है पर देवी अपने भक्तों को चतुर्वर्ग की प्राप्ति कराने वाली है। कहा गया है-

**यत्रास्ति भोगे नहि तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो हि तत्र भोगः ।**

**श्रीसुन्दरी सेवनतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ।।**

शास्त्रों में चार प्रकार के नवरात्रों का उल्लेख मिलता है । चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नवरात्रा जो कि नवसंवत्सर गुडी पर्वा विक्रमोत्सव इत्यादि नामों से प्रचलित है। शारदी नवरात्रा आश्विन शुक्लपक्ष प्रतिपदा से दुर्गा नवमी तक माना जाता है। दो गुप्त नवरात्रा आषाढ शुक्लपक्ष एवं माघशुक्लपक्ष में आतें हैं।

संस्कृति शब्द का शब्दकोशीय अर्थ  है संस्कारगत परिष्कार जो लोग नीतिशास्त्र के नियमों का पालन करते हैं तथा सदाचार एवं सदव्यवहार का पालन करतें है उन्हें ही सुसंस्कृत कहा जाता है।संस्कृति में सभी जातियों की अस्तित्व विषयक अमूर्त विषयक अमूर्त विशेषताओं की समग्र रूप से अभिव्यक्ति होती है।इसमें लोगों का जीवन पद्धतियाँ,नैतिक मान्यताएँ,मत विश्वास आदि समाविष्ट होते हैं।अत्यधिक अन्तरता किसी भी संस्कृति  की विशेषता कही जा सकती है। देशकाल पात्रानुसार सांस्कृतिक प्रतिमानों में अन्तर आ जाता है इन्हें ही वस्तुतः युगधर्म एवं सनातन धर्म कहा जाता है ।जो मूल्य सतयुग मे थे वे

 ISSN – 2349-3100

त्रेता में नहीं जो त्रेता में वह द्वपर में नहीं और द्वापर में नहीं और जो द्वापर वह कलयुग नहीं पाए जाते हैं मनुस्मृति में कहा गया है-

**अन्ये कृते युगे धर्मः त्रेतायां द्वापरे अपरे।**

**अन्ये कलयुगे नृणां युगसह्रसानुरुपतः ।।**

धर्म संज्ञक प्रत्यय भी एक सांस्कृतिक प्रतिमान है,उपासना धर्मचरण पद का पर्यावाची है कारण की लौकिक तथा शास्त्रीय दोनों ही दृष्टीयों में धार्मिक वह व्यक्ति माना जाता है जो श्रद्धा,तपस्या,सत्य,अक्रोध,तितीक्षा आदि सदगुणों से युक्त हो तथा व्रत,उपासना के समय में इन सदगुणों की रक्षा के लिए दृढसंकल्प हो स्थिर चित्त हो यथा-

**दुर्ग स्मृति हरसि भीतिमशेष जन्तोः**

**स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।**

प्रत्येक पर्व,त्योहार उपासना व्रतमूलक है।व्रत केवल हिन्दुधर्म का प्रत्यय नहीं है,मुस्लमानों का रोजा,निश्चय ही व्रत है तो प्रायश्चित के उद्देश्य से ईसामसीह द्वारा किए 40 दिनों के उपवास में व्रत का बीज सुरक्षित है। समस्त भारतीयों द्वारा नवरात्रोपासना में व्रत करना सांस्कृतिक एकता का ही प्रतीक है।कहा गया है-

**नवरत्रोपवासेन यथाशक्त्या नृपोत्तम।**

**एवं विन्ध्यवासिन्यां नवरात्रमुपोषितः।।**

नवरात्रि पर्व त्योहार प्रकरण में मन्दिर, मस्जिद,गिरिजाघर, गुरूद्वारा आदि उपासना गृहों का आद्य रुप कोई सुरक्षित टीला या पेड विद्यमान माना जा सकता है जो कालान्तर में छोटी सी काष्ट उपज से पक्की इमारती ढांचे में विकसित हुआ।यह मूलतः अदृश्य शक्तियों के साथ निवास व्यवस्था की मानवीय भावना का परीचायक है सामान्य दिनों में आराध्य देवी देवता अपने इस महान् निर्मित निवासगृह में वास करते हैं। भविष्यपुराण में कहा गया है-

**पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे।**

**गृहे गृहे शक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने।।(भविष्योत्तरे)**

अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की सार्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसलिये हमारी संस्कृति को सनातन संस्कृति कहा जाता है।वर्ण तथा वर्गभेद होने पर भी प्रायः सभी में सद्भावना है,सामनजस्य है,एकता है एक दूसरे के सुख-दुख मे खडे होना, पुरुषार्थ मातृभावना,जीवनमूल्यों के प्रति प्रेम और अटूट आस्था होना भारतीय संस्कृति कि हमारा सांस्कृति संगठन सुदृढ दुर्भेदय है-

**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।**

**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग् भवेत्।।**

अन्त में-

**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमाग्निः।**

**तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।**

**विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्रविभाग,**

**भोपाल परिसर,भोपाल,म.प्र.**

 ISSN – 2349-3100

# नवीन सेमनाथ मन्दिर का वास्तु दृष्टि से निरूपण

✍ डॉ.आशीष कुमार चौधरी

**नवीन सेमनाथ** का मन्दिर विशाल परकोटे से घिरा हुआ है। इसके अतिरिक्त भी एक परकोटा है जो सम्पूर्ण मन्दिर परिसर को घेरे हुए हे। प्रथम परकोटे अन्दर यज्ञकुण्ड तथा अन्य छोटे-छोटे मन्दिर हैं। व्दितीय परकोटे व्दारा मुख्य मन्दिर परिसर में प्रवेश करने की व्यवस्था है जिसे दिग्विजय व्दार कहा जाता है। व्दितीय परकोटा समुद्र के ठीक किनार है। सम्पूर्ण मन्दिर परिसर मन्त्र ध्वनि से ध्वनित होते रहती है। नवीन सोमनाथ मन्दिर के प्रांगण में भी कई देवी देवताएँ विद्यमान हैं। दिग्विजय व्दार से ही मन्दिर के पूर्वी भाग का दर्शन हो जाता हैं। यह सम्पूर्ण मन्दिर **तीन भागों** में बटा हुआ हैं। प्रथम सभामण्डप जो मन्दिर का मुख्य व्दार बाद पड़ता है, व्दितीय नृत्यमण्डप जो सभामण्डप के पास विद्यमान है तथा तृतीय भाग जो सात मंजिल वाला भाग है जिसके ठीक नीचे **गर्भगृह** विद्यमान है।

**नागरशैली** में निर्मित सोमनाथ मन्दिर का प्रथम सभा मण्डप जो चारों ओर खुला है जहाँ नित्य कीर्तन पूजा इत्यादि होते ही रहते है। सभा मण्डप में प्रवेश हेतु लगभग **30 फीट** उँचा मुख्य व्दार है। विभिन्न कलाकृतियों से व्याप्त यह मण्डपमन को हर्षोल्लाषित कर देता है। यहाँ प्रत्येक कर्णिका पर लगभग **4 x 20** का खम्बा विद्यमान है। चारों भागों को ध्यान से मिलाकर देखने पर यह स्वस्तिक आकार का दिखाई है। सभा मण्डप के ठीक उपरी भाग शिवयन्त्र निर्मित है उनके आसपास में कई कलाकृतियाँ विद्यमान हैं जो भारत अन्य मन्दिरों में कहीं दिखाई नहीं देता हैं। सभा मण्डप के मध्य से चारों ओर चार-चार कर्णिका हैं इतने ही सभा मण्डप से बाहरी भाग में विद्यमान है। प्रत्येक कर्मिक प विशाल स्वप्न की परिकल्पना की गई है। उन स्तम्भो पर विविध देवि-देवता, **यक्ष-गन्धर्वो** की  कलाकृतियाँ निर्मित हैं। इन सभी का अपना विशिष्ट महत्व है तन्त्र-मन्त्र साधना का यह उपयुक्त स्थान माना जात है इसी कारण यह प्रत्येक समय मन्त्र साधना निरन्तर चलती रहती है। यदी ध्यान दिया जाए तो ज्ञात होगा कि मन्त्र साधना इन कर्णिकाओं पर हि किया जाता है यो कर्णिक स्वरूप **त्रिकोणाकार** है जहाँ देवी शक्ति का मूल विद्यमान होता है। तीन कोणों से विशिष्ट प्रकार से निर्मित होने के कारण इसे **'त्रिकोण चक्र'** कहते हैं। त्रिकोण दो प्रकार के होते हैं – **ऊर्ध्वांग्र कोणात्मक तथा अधोङ्ग्र कोणात्मक** । ऊर्ध्वांग्र कोणात्मक त्रिकोण का अग्रभाग पूर्व दिशा कि ओर होता है जबकि अधोङ्ग्र कोणात्मक पश्चिम दिशा की ओर होता है। ऊर्ध्वांग्र कोणात्मक त्रिकोण को शिव-त्रिकोण तथा अधोङ्ग्र कोणात्मक त्रिकोण को शक्ति-त्रिकोण कहते हैं। श्रीचक्र में नवौं चक्र हैं- त्रिकोण चक्र। त्रिकोण चक्र का वर्ण बन्धूक पुष्प के समान लाल तथा चमकीला होता है। **त्रिकोणचक्र** का रुप अत्यन्त अलौकिक होने के कारण इसे दिव्यरुप शब्द से परिभाषित किया गया है। सभा मण्डप पर विविध देवी-देवताओं की प्रतिमा यहाँ की आध्यात्मिक तेत्रोक्त शक्ति का परिचायक हैं। **संकीर्तन मण्डप** से लगभग **25 फीट** उँचे मुख्य व्दार से नृत्यमण्डप में प्रवेश करते है। व्दार से ही **<u>नृत्यमण्डप</u>** का अद्भूत स्वरुप दिखाई देता है तथा अर्मगृह में स्थित सृष्टि के दृष्टा सोमनाथ ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन प्राप्त होता है। <u>नृत्यमण्डप</u> के व्दार पर नक्कासी की गई है। विविध कलाकृतियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं। दोवालय में चौकी मण्डप के अग्रभाग में अवस्थित रंगभूमि के उपर ही नृत्य मण्डप की संरचना की जानी चाहिए। ऐसा समस्त प्रासादों के अग्रभाग में बनाने का विधान किया गया है। वस्तु मञ्जरी में कहा गया हैं- "नृत्यार्थ व्दादशस्तम्भो व्दि व्दि स्तम्भ विविधनिम्।। यावह स्तम्भाश्चतुषष्टि सप्तविँशति मण्डपाः। नृत्यमण्डप वञ्चोईर भूमिभूहर्वे वितानका।।" (स्तम्ब 2,148-149) **<u>नृत्यमण्डप</u>**की चारों कर्णिका पर द्वि-देवताओं के मन्दिर विद्यमान है तथा प्रवेश एवं निष्काषण हेतु तीन व्दार हैं। पूर्वी व्दार से मन्दिर में प्रवेश होता हैं वही दक्षिणि तथा उत्तरी व्दार से निष्काषण की व्यवस्था है। पूर्वी व्दार से निष्काषण किया जा सकता है। नृत्यमण्डप का उपरी भाग वृत्ताकार है इनके चारों ओर कक्ष निर्मित है मध्य में यहाँ भी संकीर्तन मण्डप के अनुरुप है विविध मन्त्र-यन्त्र विद्यमान हैं जो शक्ति को ओतित करता है। कलाकृतियाँ गर्भगृह का आन्तरिक भाग **24 x 15 फीट** का है। गर्भगृह में ब्रह्माजी, पार्वतीमाता, सूर्यभगवान, गंगामाता, लक्ष्मीमाता, त्रिपुरषुन्दी, अम्बामाता, नवग्रह विद्यमान है। गर्भगृह के आन्तरिक भाग में नक्कासि की गई हैं। शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा विशेष प्रकार के यन्त्रों पर कि गई है जो गोपनिय रुप में वहाँ विद्यमान है, ऐसा सबसे वृद्ध पण्डित जी की मु खारविन्द से  प्राप्त हुआ।सन्ध्या पूजन में भी अत्यन्त गोपनियता बरती जाती है। शिव-शक्ति तो स्वयं तन्त्र प्रतिक है उनकी आधारता का स्वरुप ही तन्त्रमय है इनकें कोई सन्देह नहीं। गर्भगृह का आन्तरिक स्वरुप भी इसी पआकार का द्रष्टव्य है। विविध दावी-देवता का सन्निवेश उनकी पूजन विविधयाँ यह निश्चय ही इसी तरफ ईशारा करती है।

शिखर भाग **सात** मंजिला है। गर्भगृह व उसके ऊपर का शिखर मिलाकर मन्दिर **नवमंजिला** है। शिखर भाग में कलश विद्यमान है, जो बन्द कमल के रुप में दिखाई देता है। महानिर्वाणतन्त्रम्[53] के अनुसार स्वर्ण से निर्मित कलश मोक्षदायक, ताम्र से निर्मित कलश पीतिकर, कांस्य से निर्मित पुष्टिवर्धक, कांच से निर्मित वशीकरण पाषाण से निर्मित कलश स्तम्भकारक तथा मृण्मय कलश सभी कार्यों के लिए प्रशस्त कहा गया है। छत्तीस अंगुल चौड़ा, सोलह अंगुल ऊँचा होता है, चार अंगुल परिमाण इसके कण्ठ का है, मुख का विस्तार छः अंगुल और तल का परिमाण पाँच अंगुल का कलश का प्रमाण रखना चाहिए जो यहाँ उचित प्रतित होता है। कलश के पास ही लगभग **108 फीट** का **स्तम्भ** एवं त्रिशुल एवं डमरु स्थित है। डमरु युक्त ध्वजदण्ड 37 फीट लम्बा जिसकी परिधि 1 फीट है। 72 रत्न चड़ित स्तम्भों पर विद्यमान मन्दिर की ऊँचाई लगभग 160 फीट है। व्यास 12 फीट जिन्हें कंक्रीट से अत्यन्त मजबूत बनाया गया है। नृत्यमण्डप तथा सभामण्डप गर्भगृह के शिखर भाग की आकृति त्रिकोणाकार है जो विविध श्रृङ्गो से आच्छादित है। श्रृङ्गो के पास बलानाक भी निर्मित है। प्रत्येक श्रृङ्गों को शिखर भाग से जोड़कर बनाया गया है इन सभी श्रृङ्गेगो के अलग-अलग भ्रामरी पथ पर भी छोटे-छोटे कई श्रृङ्ग विद्यमान है तथा उन सभी में कलश निर्मित है। इन सभी श्रृङ्गो के मध्य मेरु दण्ड रुप में स्तम्भों की भी कल्पना यहाँ दिखाई देती है। बलानक को दो स्तम्भो पर निर्मित किया गया तथा उनके नीचे से स्तम्भो व्दारा मजबूती प्रदान की गई है। देवालय के व्दार के अग्रभाग में बलानक बनाने का निर्देश है। देवालय में बलानक का विस्तार कितना हो, इस सम्बन्ध में निर्देश है कि बलानक का विस्तार जगती के चौथे भाग का अथवा चौथे भाग अल्प, शाला और अलिन्द के मान से प्रासाद के जर्ममान के या प्रासाद के मान के बराबर रखने का विधान है। **(प्रासादमण्डलम् 7- 37/38)**

पूरे मन्दिर की परिक्रमा के लिए परिक्रमा पथ का निर्माण भी किया गया है। जिसपर आवरण देवता को निर्मित किया गया है। मन्दिर प्राङ्गण में कपर्दि व्नायक, पार्वती मन्दिर, हनुमान मन्दिर, संकीर्तन भवन, व्दादश ज्योतिर्लिंग मन्दिर तथा कई छोटे-छोटे मण्डप तथा दीशा सूतक यन्त्र भी विद्यमान है। मन्दिर प्रांगण के ईशान कोण में स्थित कपर्दि विनायक मन्दिर लगभग 30 फीट ऊँची है। यहाँ गर्भगृह में 2 फीट का मण्डप विद्यमान है। मण्डप चारों ओर कलाकृतियों से अलंकृत है। मण्डप पर 5 फीट ऊणची विनायक जी की मूर्ति विद्यमान है। गर्भगृह 8 x 10 फीट का है। गर्भगृह के आगे स्थित मण्डप 8 x 8 फीट है। गर्भगृह का व्दार **5 फीट** है। हनुमान मन्जिर की ऊणचाई अत्याधिक नहीं, यह लगभग 35 फीट की होगी जिसके गर्भगृह में 6 फीट की हनुमान जी की मूर्ति विद्यमान है। गर्भगृह का मुख्य व्दार 20 फीट का हैं। प्रांगण में ही प्राचीन पार्वती मन्दिर का अवशेष विद्यमान है पश्चिमी भाग में विद्यमान जहाँ पूजा अर्चना अभी भी होती है। प्रागण में भी विशाल होम स्थल है जहाँ विशेष पूजन के समय होम इत्यादि किया जात है। पास में ही संकीर्तन मण्डप अत्याधिक विशाल है जिसके दोनों ओर भ्रामरी पथ निर्मित है।उसके पास ही व्दादश ज्योतिर्लिंग की प्रतिमा स्थित है। प्रचिमा विशाल मण्डप पर उनका परिचय सहित रखी गई है।

## संन्दर्भसूची

1.Gupta, Alok- History of India, Vol-2, PP-224

2. तत्रैव, पृ. 230

3 तत्रैव, पृ. 235

4 Munsi M.M.; Somnath, Chitragupt Publication, Ed.1989, PP.198-199

5. तत्रैव पृ. 202

6. तत्रैव, पृ. 210

7. Joshi Rakesh; History of Gujrat

8. तत्रैव, पृ. 230

9. तत्रैव पृ. 235

10 .मन्त्रमहोदधिः, पृ. 313

11. आगमरहस्य, 8/99-101

12 महानिर्वाणतन्त्रम्, 5/182-185

13 प्रासादमण्डनम्, 7/38-38

**असि.प्रो.ज्योतिष विभाग .राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,क.जे.सोमैया.सं.वि.**

 ISSN – 2349-3100

# भारतीयदर्शने योगस्य महत्त्वम्

✍डा. ओमनारायणमिश्रः

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः अर्थात् चित्तवृत्तीनां निरोधनैव योगस्य संसद्धिः। अवस्थायामस्यां जीवः स्वरूपम् अभितिष्ठति। चित्तस्य पञ्च भूमयः – **क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तम् एकाग्रं निरूद्धमिति चित्तभूमयः।** तत्र क्षिप्तं मूढं विक्षिप्तमिति भूमित्रयं योगानुपकारि। पतञ्जलिमते चित्तवृत्तयः भवन्ति यथा- **वृत्तयः पञ्चतयः विलष्टाविलष्टाः। प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा स्मृतयः।** तत्र प्रमाणानि त्रीणि- प्रत्यक्ष-अनुमान-आगम (शब्द) नामकानि। विपर्ययो मिथ्याज्ञानम् अविद्या वा। **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।** अभाववोधस्वरूपा तमोमूला च वृत्तिर्निद्रा। **अनुभूतविषयासम्प्रयोषः स्मृतिः** अनुभूतविषयालूरूपा वन्तिः स्मृतिरित्युच्यते। वृत्तिनां निरोधे संस्काराणाम् अपि निरोधो जायते। **योगः द्विविधः- संप्रज्ञातः असंप्रज्ञातश्च।** यत् चित्तस्य एकाग्रतावस्थायां सद्भूतमर्थं प्रकाशयति, वलेशान् शमयति, कर्मबन्धनानि शिथिलयति, निरोधावस्थाम् अभिमुखं करोति, स संप्रज्ञातो नाम योगः। सर्ववृत्तीनां निरोधे असंप्रज्ञातः समाधिः। अयमेव निर्बीजः समाधिरपि उच्यते। अत्र बीजस्यावलम्बनस्य वा असद्भावात्। क्लेशा विघ्नस्वरूपाः। **अविद्यास्मिता-राग-द्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।** अस्मितादिक्लेशचतुष्टयस्य मूलम् अविद्दैव। **अनित्याशुचिदुः खानात्मसु नित्य-शुचि- सुखात्मख्यातिरविद्या। दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतैवास्मिता। सुखानुशयी रागः। दुःखानुशयी द्वेषः।**गीतायामष्टाङ्गयोगस्य वर्णनमेवं रूपेण अस्ति यथा- **सर्वयोगमयी गीता सर्वसाधनसिद्धिदा।**

**तस्मादष्टाङ्गयोगस्य वर्णनं न यथाक्रमम्।। सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।**
**ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।। (गीता-6/29)**

योगसाफल्याय कायस्य मनस इन्द्रियाणां च शुद्धिः अभिष्टा। तदर्थं साधनाष्टकं योगसूत्रे प्रतिपाद्यते।

**यम- नियम- आसन- प्राणायाम- प्रत्याहार- धारणा- ध्यान- समाधयोष्टावङ्गानि।**

1. **यमाः - अहिंसा- सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।**
   अष्टाङ्गयोगस्य प्रथमोऽङ्गः यमः। अयं सत्याहिंसाऽस्तेयापरिग्रहब्रह्मचर्यश्च समाहारः । यमःशुब्दः **"यमु उपरमे "** धातोः निष्पन्नः । यस्य तात्पर्यः भवति उपमरणस्य साधनम् । अर्थात् वक्तुं शक्यते यत् चित्तवृत्तेः नियन्त्रणंनियमञ्चापरनाम यमः । अहिंसा- सर्वभूतानां अनभिद्रोहः। सत्यम्- वाङ्मनसयेः एकरूपता। अस्तेयम्- चौर्याभावः, परद्रव्यस्य आहरणं वा। ब्रह्मचर्यम्- जितेन्द्रियता, इन्द्रियवशिकरणं च। अपरिग्रहः- भौतिकविषयाणां परिहारः।
2. **नियमाः- शौच-संतोष-तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।**
   यमानां परिपालनेन साकं नियमानामनुपालनमावश्यकम् । यत्र यमानां संबन्धः अन्यप्राणिभिः सह वर्तते तत्र नियमानामनुपालनं स्वस्यकृते सुखकरं भवति । पञ्चकर्माणि युक्तानि नियमः, तत्र शौचम्- बाह्याभ्यन्तर-शुद्धिः। सन्तोषः- यथाप्राप्तेन सन्तुष्टिः। तपः सुख-दुःख-शोकहर्षदि द्वन्द्वानां सहनम्। स्वाध्यायः- अध्यात्यपराणां शास्त्रीयानां च ग्रन्थानाम् अध्ययनं प्रणवस्य जपो वा। ईश्वरप्रणिधानम्- ईश्वर- चिन्तनम् ईश्वरार्पणं च। अस्मिनविषये महर्षिमनुना उक्तं- **यमान्सेवेत सततं न नित्यं नियमान्वुद्धः । यमान्यत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन ।। (मनु.-4.204)** उपर्युक्तश्लोके महर्षिमनुना कथ्यते, अन्येषां प्राणीनां कृते यः हिंसकः, वैरिणः, असत्याचारिणः, चौरकार्येप्रबृत्तः, परदारालोलुपः, तस्य स्वस्य कृते अनुपालितानां शौच-संतोष-तप-स्वाध्याय-प्राणिधानादीनां कार्याणां लाभप्रदः न भवति । एतादृशः जनः विद्याभावेन अस्मिन्नेव संसारे सञ्चरति ।
3. **आसनम्- स्तिरसुखमासनम् ।।**
   चित्तवृत्तीनां निरोधाय साधकेन एकस्मिन्नेव आसने उपवेसनाभ्यासः करणीयः । साधकानां कृते तदासनं समीचीनं भवति यस्मिन् दीर्घकालपर्यन्तं विना असौविध्येन योगकर्मनिमित्ताय उपविष्टुं शक्नुयात् । आसनं तु वहुविधं परञ्च यौगिकैः प्रायः पद्मासनं सिद्धासनं वा स्वीक्रियते। संक्षेपेण, स्थिरतया दीर्घकालं यावत् सुखेन निषदनम् आसनमिति। पद्मासन-सिद्धासन-शीर्षासनादीनि योगासनान्यत्र संगृह्यन्ते। योगासनैः कायरोगचिकित्सापि संजायते।
   गीतायां आसनस्य प्रमुखानां विधीनामुद्घाटनम् एतावत् वर्तते-
   **योगीयुञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः । एकाकी यत्तचित्तात्मा निराशीरपरिग्रह ।।**
   **शुचौ देशेप्रतिष्ठप्य स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।।**

 ISSN – 2349-3100

**तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रिया । उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।।**
**समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः । सम्प्रेक्ष्य ननासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।। (गीता-6/10-13)**

4. **प्राणायाम्- तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।**
बाह्यस्य वायोराचयनं श्वासः, अन्तर्गतवायोर्निः सारणं च प्रश्वासः, तयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः । अर्थात् यः वाह्याभ्यन्तरुभयोक्षेपी प्राणायां निगद्यते । यथा वायुः उदरात् वाह्यदेशं प्रतिगन्तुं प्रथमक्षणे प्रवर्तते तं संलक्ष्य पुनः वाह्यदेशाद् आभ्यन्तरं प्रति प्राणवायुं धार्यते प्राणायाम् । महर्षिव्यासेन उक्तं यत् प्राणायाममेव परमं तपः । महाराजमनुना निगद्यते यत्-
**प्राणायामाब्राह्मणस्य त्रयोपि विधिवत्कृताः । व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ।।**
**दाह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः । तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।।**
**प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्विषम् । प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ।। (मनु.-6/70-72)**

5. **प्रत्याहारः- स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।**
प्रत्यारशब्दस्य तात्पर्यः भवति- प्रति शब्दस्यार्थः भवति विपरीत एवमेव आहारः शब्दस्यार्थः भवति विषयः , इन्द्रियाणां विषयाणां विनाग्रहणेन परावर्तनमेव प्रत्याहारः । परञ्च इयं मनोस्थितिः विनामनोनियन्त्रणेन कदापि न संभवति । इन्द्रियाणां स्वविषयेभ्यो निवृत्तिः, अर्न्तमुखी वृत्तिश्च प्रत्याहार इत्यभिधीयते।

6. **धारणा- देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।**
यम-नियम-आसन-प्राणायाम्-प्रत्याहारश्च पञ्चवहिरङ्गाणि साधनानि , इतः परम् अन्ये च अन्तरंगाणि । धारणा तु प्रथमा तेषु । गरुणपुराणस्य श्लोकोςयं यत्-
**प्राणायामैर्द्वादशभिर्यावत्कालः कृतो भवेत् । स तावत्कालपर्यन्तं मनोव्रह्माणि धारयेत् ।। ग.पु.-1/227/24**
हृत्कमले, नासिकाग्रे, भ्रूमध्ये, अन्यत्र वा कस्मिश्चित् निर्दिष्ट स्थाने चित्तस्यैकाग्रता धारणेति व्यवहृयते। धारणया मनसो निग्रहः, एकाग्रता विषयैक्ये मनसोςभिरुचिश्च प्रवर्तते।

7. **ध्यानम्- तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यनम्।**
योगशास्त्रे ध्यानस्य लक्षणं विहितं यथा-**रागोपहतिर्ध्यानम् ।। सांख्य-3.30ध्यानं निर्विषयं मनः ।। सांख्य-6.25।तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।। योग. 3.2** ज्ञानात् प्राक विषयः ध्याने भवति, कदापि न संभव्यते । यतोहि साकारवस्तूनां गुणानां ज्ञानाकरणत्वेन पर्यन्तं ध्याने नैवागच्छति ।एकाग्रीकृते चित्ते ध्यायस्य वस्तुनः एकाकाररूपेण प्रवाहो ध्यनमित्युच्यते। एकस्यैव वस्तुनः ऐकाग्रयेण चैतसा चिन्तनं तल्लीनत्वं च ध्यानमित्यनेन संसूच्यते।

8. **समाधि- तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।**
सम्यगाधीयते एकाग्रीक्रियते विक्षेपान् परित्यज्य मनो यत्र स समाधिः, यदा ध्यानं ध्येयाकाररूपं स्वरूपशून्यमिव वा भवति तदा समाधिरित्युच्यते । धारणा-ध्यान-समाधयः त्रयमेतत् **संयमः** इत्युच्यते । एवम् अष्टांगयोग साधनेन साधकः स्वचित्तवृत्तिनिरोधाद् ऐकान्तिकम् आत्यन्तिकं च सुखं विन्दति, मोक्षं चाधिगच्छति ।
**योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन । योपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां, पतञ्जलि प्राञ्जलिरानतोस्मि ।।**

**संदर्भग्रन्थानि-**


1.पातञ्जल योग-दर्शन का सरल सुबोध अध्ययन-डा. सत्यदेव चौधरी

2.योग प्रतिभा-डा. प्रतिभारानी द्विवेदी

3.पातञ्जलयोगदर्शनम्-डा. विमला कर्णाटक

4.पातञ्जलयोगदर्शनम्-स्वामीरामस्वरूपजी (योगाचार्य)

5.जैन योगसिद्धान्त और साधना-आचार्य श्री आत्माराम जी

6.वैदिक योगसूत्र -हरिशंकर जोशी

7.योगासन और प्राणायाम -स्वामी अक्षय आत्मानन्द

8.सरल योगासन-डा. ईश्वर भारद्वाज


**प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्रविभागः. रा.सं.सं,पु**

 ISSN – 2349-3100

# छन्दसि पुनर्वस्वोरिति सूत्रविमर्शः

ऋतम्भरा पाण्डेय

द्विविधं हि संस्कृतं लोके वेदे च दृश्यते। लोके भवं लौकिकं, वेदे च भवं वैदिकं संस्कृतं पाणिनीयव्याकरणस्य प्रतिपाद्यत्वं वहते। अत एव पाणिनीयव्याकरणमधीयमानाः जनाः काशिकाकौमुद्यादिग्रन्थेषु लौकिकप्रयोगस्य वैदिकप्रयोगस्य च साधुत्वानुशासकानि शास्त्राणि अधीयन्ते। तत्र तावत् वैदिकप्रयोगसाधकानि त्रिषष्ट्यधिकशतद्वयप्रायाणि सूत्राणि सन्ति। तैः सूत्रैः सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनरादीनामनुशासनं विधीयते। तेषु सर्वेषु आद्यं सूत्रमिदं 'छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्'[1] इति रूपम्। अत्र 'छन्दसि' पदं वेदार्थबोधकम्। यथा रघुवंशे- "आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवछन्दसामिव इति।[2]" छन्दसि इत्यत्र छदि संवरणे धातुः। धातोरनेकार्थत्वात् इह वेदार्थे भावे 'असुन्' प्रत्यये सप्तम्येकवचने छन्दसि इति रूपं भवति। सामवेदे- "छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत" श्रुतिः छन्दोगः च।[3]

तत्र भट्टोजिदीक्षितेन सूत्रार्थं विवृण्वता प्रोक्तम्- 'द्वयोरेकवचनं वा स्यादिति'।[4]

तत्र **अनुवृत्तिविचारः**

अस्मिन् सूत्रे 'जात्याख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्'[5] इति सूत्रात् अन्यतरस्याम् इत्यस्यानुवर्त्तनं भवति। 'अन्यतरस्याम्' इत्यस्य विकल्पोऽर्थः, तेन अत्र सूत्रे एकवचनं विकल्पेन विधीयते, विकल्पाभावे च द्विवचनं स्यात्।

**विभक्तिनिर्देशः**

अस्मिन् सूत्रे पदत्रयं वर्त्तते। तत्र प्रथमे पदे 'छन्दसि' इत्यत्र सप्तम्यैकवचनं, द्वितीयपदे 'पुनर्वस्वोः' इत्यत्र षष्ठीद्विवचनं, तृतीयपदे च 'एकवचनम्' इत्यत्र प्रथमैकवचनम् अस्ति।

**वृत्त्यर्थविचारः**

'छन्दसि' इति पदे वैषयिकी सप्तमी वर्त्तते। तेनास्यार्थः छन्दसि विषये इति भवति। पुनर्वस्वोरित्यत्र षष्ठीविभक्तेः स्थानं नाम प्रसङ्गोऽर्थः, तेन अस्य सूत्रस्यायमर्थः - 'छन्दसि विषये पुनर्वसुप्रसङ्गे विकल्पेन एकवचनं भवेदिति। अत्र पुनर्वसुः नक्षत्रमस्ति। अस्मिन् नक्षत्रे नक्षत्रद्वयं वर्त्तते[6] तेन छन्दसि विषये पुनर्वस्वोः नक्षत्रयोः नित्यं द्वित्वे प्राप्ते विकल्पेनैकवचनं सूत्रेणानेन विधीयते। एवमेव विशाखानक्षत्रेऽपि नक्षत्रद्वयसत्वाद् 'विशाखयोश्च'[7] इति सूत्रेण छन्दसि विकल्पेन एकवचनं विधीयते, विकल्पाभावे द्विवचनमेव भवति।

**वैदिकोदाहरणम्**

वैदिकोदाहरणे उदाहरणद्वयं भवति। तत्र प्रथमं पुनर्वसुनक्षत्रमदितिर्देवता इति एकवचनस्योदाहरणम्, पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता इति च द्विवचनस्योदाहरणम्।[8] एवमेव विशाखा नक्षत्रम्, विशाखे नक्षत्रे इति।[9]

**लोके प्रयोगः**

लोके तु पुनर्वसू माणवकौ[10] द्वौ माणवकौ= बालकौ स्तः इत्यर्थः, तेन द्विवचनमेव भवति। एवं 'गां गताविव दिवः पुनर्वसू'[11] इति अन्यदुहारणमस्ति।

**वचनविचारः**

एकवचनद्विवचनविधायकं सूत्रं 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने'[12] इत्यस्ति । 'बहुषु बहुवचनम्'[13] इति सूत्रेण बहुवचनस्य विधानं भवति । इह द्व्येकशब्दौ संख्यापरौ तेन द्वित्वैकत्वयोः द्विवचनमेकवचनञ्च विधीयते इत्यर्थो भवति । अन्यथा सूत्रे सङ्ख्येयपरत्वे द्व्येकयोरित्यत्र बहुवचनत्वापत्तिः स्यात् । लोके 'आदशतः सङ्ख्यायाः सङ्ख्येये'[14] इति कोशभाष्यादिवचनेन प्रायशः संख्येयपरत्वे एव साधुता । प्रायशः इत्यनेन शब्देन कुत्रचित् सङ्ख्यापरत्वे कुत्रचित् सङ्ख्येयगतसङ्ख्यायाः शब्दार्थसङ्ख्यायाम् आरोपेण साधुता। अत एव द्वाभ्यां द्वित्वे इत्यर्थे केषां द्वाभ्यां इति प्रयोगः, केषां बहुत्वे इत्यर्थे केषां बहुषु

इति प्रयोगः दृश्यते[15]। वस्तुतस्तु सङ्ख्यावाचकानां चैकवचनद्विवचनबहुवचनानामेकत्वत्वद्वित्वत्वबहुत्वत्वावच्छिन्नेषु शक्तिः[16]। शक्तता च सुत्वौत्वजस्त्वादिना न तु स्वादितिबादिसाधारणैकवचनत्वादीनाम् एकवचनत्वादेर्दुर्वचत्वात्।

**पुनर्वसुशब्दे द्वित्वैकत्वविचारः-**

पुनर्वसू द्वे नक्षत्रे स्तः, तेन द्वयोः तारयोः सत्वाद् अवयवद्वयात्मकम् एतन्नक्षत्रम्[17] पुनर्वसुशब्देन उद्भूतावयवभेदस्य ज्योतिर्द्वयस्य समुदायरूपेणाभिधानं भवति। तेन भेदसत्त्वेऽपि समुदाये रूढत्वात् लोके द्विवचनप्रयोगः[18]। वेदेऽपि उद्भूतसमुदायस्याभिधानाद् द्वयोर्द्विवचनं प्राप्तम् अनेन सूत्रेण विकल्पेन एकवचनं क्रियते। एकवचनद्विवचनप्रयोगः विवक्षाधीनः तेन उद्भूतावयवमभिधातुमिच्छति चेद् द्विवचनप्रयोगः, तदविवक्षायाञ्च एकवचनस्य व्यवहारः दृश्यते।

**सूत्रप्रत्याख्यानम्-**

भाष्ये इदं सूत्रं प्रत्याख्यातम्, तत्रोक्तम्[19] - 'छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्', 'विशाखयोश्च' इमावपि योगौ शक्यावक्तुम्'। अत्रायमाशयः- द्वित्वविशिष्टनक्षत्रवाचकोऽपि पुनर्वसुशब्दो वेदे एकवचने प्रयुज्येत, तदर्थं 'छन्दसि पुनर्वस्वोरेकवचनम्' इति सूत्रं पाणिनिना कृतम्। तादृशः "पुनर्वसु" इति प्रयोगः पुनर्वसुशब्दात् 'औ' विभक्तौ, "सुपां सुलुक्पूर्वसुवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः[20]" इति सूत्रेण पूर्वसवर्णे कृते सम्भवति। तदेवं द्विवचनेऽपि एकवचनवद्रूपं पाणिनेः इष्टमन्यथा सिद्ध्यति। अतः सूत्रमिदं प्रत्याख्येयमिति।

**कश्चिद्विशेषः**

पुनर्वसुनक्षत्रं युग्मबोधकम्। वैदिककाले ज्योतिषविज्ञानं एतादृश्यां स्थित्यां नासीत् येन इदं नक्षत्रं युग्मरूपेण ज्ञातुं प्रभवेत्। तेन एकवचनं वा द्विवचनं वा इति संशयेन विकल्पत्वं निश्चितम्। अनन्तरं संस्कृतभाषायाः उद्भवकाले युग्मस्य ज्ञानेन तस्मिन् नक्षत्रे द्वे-द्वे नक्षत्रे स्तः इति निर्धारणमभवत् तस्मात् लोके द्विवचनप्रयोगः रूढत्वं गतः॥

**सन्दर्भसूची-**


1. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- सूत्र ३३८६ पृष्ठ-३८०, अध्याय-१/२/६१
2. वाचस्पत्यम्- पृष्ठ- २९७७
3. वाचस्पत्यम्- पृष्ठ- २९७९
4. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- पृष्ठ- ३८११
5. अष्टाध्यायी- १/२/५८
6. लघुशब्देन्दुशेखरः- पृष्ठ- ३८१
7. अष्टाध्यायी- १/२/६२, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- पृष्ठ- ३८१
8. काशिकावृत्तिः- पृष्ठ ३७०, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- पृष्ठ- ३८१
9. काशिकावृत्तिः- पृष्ठ ३७०, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- पृष्ठ- ३८१
10. काशिकावृत्तिः- पृष्ठ ३७०
11. सुबोधिनीव्याख्या- पृष्ठ ३७०
12. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- सूत्र-१८६, पै १८३, अ- १/४/२२
13. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- सूत्र-१८७, पै १८३, अ- १/४/१२२
14. लघुशब्देन्दुशेखरः- पृष्ठ- २१५
15. लघुशब्देन्दुशेखरः- पृष्ठ- २१५
16. व्युत्पत्तिवादः- २४०
17. लघुशब्देन्दुशेखरः- पृष्ठ- ३८१, काशिका- ३७०
18. लघुशब्देन्दुशेखरः- पृष्ठ- ३८१
19. महाभाष्य द्वितीयभागे- पृष्ठ- १२५
20. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी- सूत्र-३५६१, पै ४१४, अ- ७/१/१३९


**गवेषिका, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, क. जे. सोमैया-संस्कृतविद्यापीठ, मुम्बई।**

ISSN – 2349-3100

# पिण्डादीनां साधनम् मेलापकविचारश्च

✍ डा. नीलमाधवदाशः

1. **प्रस्तावना –**

अत्र गृहवास्तोः पिण्डानयनं, आयसाधनं, वारसाधनं, अंशानयनं, द्रव्य-ऋणयोरानयनं, नक्षत्रज्ञानं, तिथिसाधनं, गृहायुज्ञानं, व्ययसाधनं, गृहगृहेशयोः मेलापकविचारश्च ज्ञानं क्रियते । वस्तुतः वास्तुशास्त्रेऽस्मिन् सुखेन जीवनं यापयितुं शुभवास्तुसमत्तं गृहनिर्माणस्यादेशं क्रियते । तस्य गृहस्य क्षेत्रफलस्य निर्धारणं पिण्ड़साधनेन एव भवति । अर्थात् समचतुर्भुजक्षेत्रे आयताकारक्षेत्रे यावत् पिण्डमानं लभ्यते तावत् गृहस्य विस्तृतिदैर्घ्ययोः गुणनफलं क्षेत्रफलमानं भवति । (गृहस्य विस्तारमानं × गृहस्य दैर्घ्यमानं = गृहस्य क्षेत्रफलम्) (विस्तारः लम्बाई इति हिन्द्याम्, दैर्घ्य चौडाई इति हिन्द्याम्)। समकोणत्रिभुजाकारक्षेत्रे अपि गृहस्य विस्तृतिदैर्घ्ययोः गुणनफलस्यार्धं क्षेत्रफलं पिण्डमानं वा भवति। विषमत्रिभुजाकारक्षेत्रे भुजकोटिलम्बैः सहायेन क्षेत्रफलं साधनीयं भवति। अतः सर्वादौ गृहस्य इष्टनक्षत्रस्य इष्टायस्य च चयनं कृत्वा पिण्डसाधनं क्रियते । तेन पिण्डमानेन गृहवास्तोः आयव्ययस्य निर्धारणं, इष्टवारस्य चयनं, इष्टनक्षत्रस्य चयनं, इष्टतिथेः चयनं, गृहायुषः निर्धारणं च क्रियते ।

## 2. पिण्डानयनम् -

**2.1. अभीष्टनक्षत्रचयनम् -** भवनस्य निर्माणाय गृहपिण्डस्य (क्षेत्रफलस्य) निर्धारणमादौ करणीयम् । तस्य गृहपिण्डस्य साधनं कर्तुं सर्वप्रथमे इष्टनक्षत्रस्य चयनं भवेत् । व्यक्तेः प्रसिद्धनामनक्षत्रानुसारं गृहस्य शुभनक्षत्रस्य चयनं प्रागेव निर्धारणं कर्त्तुं शक्यते । तत्र यथा विवावे कन्यावरयोः मेलापकविचारः क्रियते तथा गृहकर्तुनक्षत्र-गृहनक्षत्रयोः शुभमेलापकं दृष्ट्वा अभीष्टनक्षत्रस्य चयनं स्यादिति भावः । केषाञ्चित् विदुषां मतमस्ति यत् – गृहनक्षत्रस्याधारेण गृहस्य नाम स्थाप्यते । तथा गृहनक्षत्रस्य कल्पनया क्षेत्रफलस्य चयनं स्वेच्छानुसारं भवति । तत्रापि गृहनक्षत्रस्य चयनं कर्तुं शुभाशुभनक्षत्रचक्रं द्रष्टव्यम् । तद्यथा – कृत्तिकानक्षत्रतः प्रारभ्य त्रिभिः त्रिभिः नक्षत्रैः गृहनक्षत्रानुसारं गृहे क्रमात् अग्रिमोक्तानि उद्वेगादि फलानि ज्ञेयानि । स्पष्टार्थं सारणी -

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **नक्षत्राणि** | कृत्तिका | आर्द्रा | आश्लेषा | उ.फा. | स्वाती | ज्येष्ठा | उ.षा. | शतभिषा | रेवती |
| | रोहिणी | पुनर्वसुः | मघा | हस्तः | विशाखा | मूलः | श्रवणः | पू.भा. | अश्विनी |
| | मृगशीर्षः | पुष्यः | पू.फा. | चित्रा | अनुराधा | पू.षा. | धनिष्ठा | उ.भा. | भरणी |
| **फलम्** | उद्वेगः | पुत्रप्राप्तिः | धनप्राप्तिः | शोकः | शत्रुभयः | राजभयः | मृत्युः | सुखः | प्रवासः |
| | मध्यमं | उत्तमं | उत्तमं | मध्यमं | मध्यमं | मध्यमं | नेष्टः | उत्तमं | मध्यमं |

अत्र गृहमेलापके नक्षत्रानुसारं वक्ष्यमाणप्रकारेण राशिज्ञानं करणीयम् । यथा – मेषराशौ अश्विनी-भरणी-कृत्तिकानक्षत्राणि ज्ञेयानि, वृषराशौ रोहिणीमृगशीर्षनक्षत्रे, मिथुनराशौ आर्द्रा-पुनर्वसुनक्षत्रे, कर्कराशौ पुष्य-अश्लेषानक्षत्रे, सिंहराशौ मघा-पूर्वफाल्गुनी-उत्तरफाल्गुनीनक्षत्राणि, कन्याराशौ हस्तचित्रानक्षत्रे, तुलराशौ स्वातिविशाखानक्षत्रे, वृश्चिकराशौ अनुराधा-ज्येष्ठानक्षत्रे, धनुराशौ मूल-पू.षा.-उ.षा.नक्षत्राणि, मकरराशौ श्रवणधनिष्ठानक्षत्रे, कुम्भराशौ शतभिषापूर्वभाद्रपदनक्षत्रे, मीनराशौ उत्तरभाद्रपद-रेवतीनक्षत्रे च ज्ञेये । वस्तुतः फलितज्योतिषे जन्माङ्गचक्रे यथा नक्षत्रानुसारं राशिज्ञानं कथितं तथा गृहमेलापके न कथितम् । गृहमेलापके नक्षत्रानुसारं राशिज्ञानं भिन्नमस्ति । स्पष्टार्थं सारणी -

| | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्राणि | अश्वि. | रोहि. | आर्द्रा | पुष्यः | मघा | हस्तः | स्वाती | अनु. | मूलः | श्रव. | शत. | उ.भा. |
| | भरणी | मृग. | पुन. | आश्ले. | पू.फा. | चित्रा | विशा. | ज्येष्ठा | पू.षा. | धनि. | पू.भा. | रेवती |
| | कृत्ति. | | | | उ.फा. | | | | उ.षा. | | | |
| राशिः | मेषः | वृषः | मिथुनः | कर्कः | सिंहः | कन्या | तुलः | वृश्चिक | धनुः | मकरः | कुम्भः | मीनः |

अत्र उपर्युक्तसारणीतः गृहनक्षत्रस्य राशिज्ञानं कृत्वा अनयोः गृहस्वामी-गृहराश्ययोः भकूटं विचार्यतेति भावः। ध्यातव्यं यत् यदि गृहेशगृहयोः एकनक्षत्रं मृत्युप्रदायकं भवति । एवं विवाहे मेलापके नाडी भिन्नता शुभप्रदा स्यात् परन्तु गृहमेलापके एकनाडी शुभप्रदा स्यादित्यर्थः। वास्तुराजवल्लभे निम्नप्रकारेण नक्षत्रयोः परस्परशत्रुता कथ्यते। तद्यथा –

| नक्षत्रम् | तस्य शत्रु नक्षत्रम् |
|---|---|
| उत्तराफाल्गुनी | अश्विनी |
| स्वाती | भरणी |
| रोहिणी | उत्तराषाढा |
| श्रवणः | पुनर्वसुः |
| चित्रा | हस्तः |
| पुष्यः | आश्लेषा |
| ज्येष्ठा | विशाखा |

ISSN – 2349-3100

**2.2 इष्टायचयनम् -** गृहपिण्डस्य साधनं कर्तुं इष्टनक्षत्रस्य चयनमनन्तरम् इष्टायस्य चयनं भवेत् । वस्तुतः वास्तुशास्त्रे ध्वजादि अष्टविधाः इष्टायाः कथिताः । ते यथा – ध्वजः, धूमः, सिंहः, श्वानः, वृषभः, खरः, गजः, ध्वांक्षाश्च । सामान्यतया निवासगृहस्य कृते विषमसंख्यकाः आयाः (ध्वजः, सिंहः, वृषः, गजः) शुभाः सन्ति । तत्र समसंख्यकाः आयाः (धूमः, श्वानः, खरः, ध्वांक्षः) त्याज्याः। पुनरपि इष्टायस्य चयनार्थं शुभाशुभफलानां ज्ञानं, दिशामुखज्ञानं, ब्राह्मणादिवर्णतः शुभाशुभज्ञानं, राशितः शुभज्ञानं च करणीयम् । यस्य शुभाशुभचक्रं निम्ने प्रदत्तमस्ति –

| क्र.सं. | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **आयः** | **ध्वजः** | **धूमः** | **सिंहः** | **श्वानः** | **वृषभः** | **खरः** | **गजः** | **ध्वांक्षः** |
| **फलम्** | कीर्तिलाभः धनलाभः | शोकः भ्रमः | जयः लक्ष्मीयुक्तः | शत्रुयुक्तः कलहः | धनलाभः धान्ययुक्तः | दरिद्रता स्त्रीनाशः | सुखः पुत्रलाभः | रोगयुक्तः शून्यता |
| **दिशामुखम्** | पूर्वः | आग्नेयः | दक्षिणः | नैऋत्यः | पश्चिमः | वायव्यः | उत्तरः | ईशानः |
| **वर्णतः शुभाशुभम्** | ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः शूद्रः | हीनजातिः चर्मकारः | क्षत्रियः वैश्यः शूद्रः | हीनजातिः रजकः | ब्राह्मणः क्षत्रियः वैश्यः शूद्रः | हीनजातिः वेश्या | क्षत्रियः वैश्यः शूद्रः | हीनजातिः |
| **राशितः शुभत्त्वम्** | कर्कः वृश्चिकः मीनः | - | वृषः कन्या मकरः | - | मेषः सिंहः धनुः | - | मिथुनः तुलः कुम्भः | - |

अनन्तरं कथ्यते कस्मिन् आये किं गृहं निर्माणं कार्यम्? प्रश्नस्यास्य उत्तरमुल्लेखति वसिष्ठमुनिः –

| **आयनाम** | **किं निर्माणं कार्यम्?** |
|---|---|
| ध्वजः | गजशाला, अश्वशाला, उष्ट्रशाला, गोशाला, छत्र-वस्त्रादि निर्माणशाला, पादुकादि निर्माणशाला, मन्दिरादि शुभनिर्माणं, नानाविधशुभनिमित्तानां गृहाणां निर्माणञ्च । |
| वृषः | अश्वशाला, उष्ट्रशाला, गोशाला, शय्यादि निर्माणं, छत्र-वस्त्रादि निर्माणशाला च। |
| सिंहः | आसनादि निर्माणं, पादुकादि निर्माणञ्च । |
| खरः | अश्वशाला निर्माणम् । |
| गजः | उष्ट्रशाला, गजशाला निर्माणम् । |

च्यवनमतेन निम्नप्रकारेण आयवशात् गृहनिर्माणम् –

| **आयनाम** | **किं निर्माणं कार्यम्?** |
|---|---|
| ध्वजः | धर्मशाला, कुम्भ-स्तम्भ-ध्वजादि निर्माणम् च । |
| धूमः | पाकशाला, अग्निसम्बन्धिगृहनिर्माणं च । |
| सिंहः | प्रासादः, पुरः, मन्दिरादि निर्माणं, मन्त्र-शस्त्र-रथादि निर्माणशाला च । |
| श्वानः | यवनानां अन्त्यजानां च गृहनिर्माणम् । |
| वृषः | प्रासादः, पुरः, मन्दिरादि निर्माणं, मृत्गृह-धान्यगृहादि निर्माणं, जलागारः, गोशाला, अश्वशाला, गजशाला च निर्माणं कार्यम्। |
| खरः | वैश्यालयः निर्माणं कार्यम्। |
| गजः | प्रासादः, पुरः, मन्दिरादि निर्माणं, मृत्गृह-धान्यगृह-भण्डारगृहादि निर्माणं च कार्यम् । |
| ध्वांक्षः | व्याधिगृहाणां निर्माणं कार्यम् । |

उपर्युक्तसारण्यानुसारं ज्ञातं यत् यथा गृहनिर्माणम् अभीष्टमस्ति तथा आयः स्वीकरणीयः । एवं समुचितप्रकारैः इष्टायस्य कल्पना कुर्यात्।

**2.3 पिण्डसाधनस्योदाहरणम् –** तत्र को नाम पिण्डः? इति जिज्ञासायां सामान्यतः पिण्डशब्दस्य अर्थो भवति सम्मिलितं सघनं गोलकं समुच्चयो वा। परन्तु वास्तुशास्त्रे अस्य तात्पर्यं क्षेत्रफलं वर्तते। तस्यानयनमेव पिण्डसाधनं कथ्यते। ततः आयताकारगृहस्य क्षेत्रफलपरिभाषा - **विस्तारायामगुणितं गृहस्य पदमुच्यते।** (बृ.वास्तु.आया.श्लो -3) क्षेत्रस्य दैर्घ्यं विस्तृतिं च परस्परसंगुणिते सति, गृहस्य क्षेत्रफलं भवतीति भावः। समचतुर्भुजक्षत्रे विस्तृतिदैर्घ्ययोः गुणनफलमेव क्षेत्रफलं भवति, तथा एव आयताकारक्षेत्रस्य विस्तृतिदैर्घ्ययोः गुणनफलं क्षेत्रफलं भवति। समकोणत्रिभुजाकारक्षेत्रे अपि भुजकोट्योः गुणनफलस्यार्धं क्षेत्रफलं भवति।

1. अत्र गोपिराजमतानुसारेण पिण्डानयनं प्रदर्श्यते-

**विष्णुं व्येकायगोभूहतिभयुजिफलं गोपिराजो भशेषात् सायं चेष्टाष्टि दृग्घ्न्या युतमहि निहता दृक्प्रकृत्याख्यविश्वे।**
**बाणाः सिद्धाष्टि नागोडवधृति गिरीश त्रयाकृतीन्द्रर्तुतत्त्वात्यष्ट्यंकक्ष्मा नखेनार्णव विकृति दिनाद्रयुत्कृतीभेन्दु काष्ठाः।।**
(बृ.वास्तु.पिण्डा.श्लो -11)

अर्थात् गोपिराजनामगुरुः स्वशिष्यं विष्णुं प्रति पिण्डानयनविधिं कथयति यत्, इष्टाये एकमूनीकृत्य, नवदशभिः गुणितं कृत्वा, अभीष्टनक्षत्रसंख्यां संयोज्य यत् योगफलं तं, सप्तविंशतिसंख्यया विहृत्य एकादिशेषानुसारं क्रमशः 2, 21, 13, 5, 24, 16, 8, 27, 19, 11, 3, 22, 14, 6, 25, 17, 9, 1, 20, 12, 4, 23, 15, 7, 26, 18 एवं च 10 इमे अंकाः ज्ञेयाः। भशेषात् उपर्युक्तानुसारं प्राप्तांकं अष्टभिः संगुण्य, अभीष्टायेन युक्ते सति योगपफलं पिण्डमर्थात् गृहयोग्यभूमेः क्षेत्रफलं भवति। उपर्युक्तक्षेत्रफले वृद्धिकरणार्थं इष्टसंख्यां 216 अनेन संगुण्य पूर्वानीतपिण्डे योजनेनाभीष्टपिण्डमानं भवतीति।

**उदाहरणम् –** यदि गृहकर्तुः नाम दोलगोविन्दः स्यात्तदा तस्य नामानुसारेण नक्षत्रं रेवती, मीनराशिः, अन्त्यनाडी, देवगणादयः अष्टकूटाः भवन्ति। अत्र गृहनक्षत्रस्य चयनकर्तुं शतपदचक्रस्य दर्शनेन ज्ञायते रोहिणीनक्षत्रस्य अन्त्यनाडी, मनुष्यगणश्च भवति। एवं च उपर्युक्तवास्तुशास्त्रसमतं नक्षत्रवशात् राशिचक्रदर्शनेन रोहिणीनक्षत्रस्य वृषराशिः भवति। अतः अनयोः गृहस्वामीनक्षत्र-इष्टनक्षत्रयोः रेवती-रोहिणीनक्षत्रयोः मेलापकविचारेण ज्ञायते यत् – अनयोः एकनाडी अन्त्यनाडी कारणात् शुभमेलापको भवति। अत एव गृहनक्षत्रम् = रोहिणी (नक्षत्रसंख्या 4) भवति। एवं कल्पितः इष्टायः = सिंहः(आयसंख्या 3) भवति। एषः आयः प्रायशः गृहनिर्माणे शुभः स्यात् ।

[{( इष्टायः - 1)× 19} + नक्षत्रसंख्या] ÷ 27 = लब्धिः, शेषमानं ग्रहणीयम्।

[{( गजायः 3 - 1)× 19} + 4] ÷ 27 =

{(2 × 19) + 4} ÷ 27 =

38 + 4 = 42, 42 ÷ 27 = लब्धिः 1 शेषम् 15

15 शेषाय निर्धारितोऽङ्कः = 25 ।

25 × 8 = 200, 200 + 3 = 203 पिण्डमानम्।

उपर्युक्तक्षेत्रफले वृद्धिकरणार्थं यदि इष्टसंख्यां = 2, तर्हि 216 अनेन संगुण्य, 216 × 2 = 432 पूर्वानीतपिण्डे योजनेनाभीष्टपिण्डमानं भवति 432 + 203 = 635 गृहपिण्डाङ्कः क्षेत्रफलम्।

2. एतद्भिन्नविधिः मेंगनाथेन कथितमस्ति -

**इष्टभात्यष्टि घातेय आयस्तेनोनितेष्टकः। त्रिहृल्लब्धहतागाश्वियुते चेष्टाय भं भवेत् ।।** (बृ.वास्तु.पिण्डा.श्लो -12)

अर्थात् इष्टनक्षत्रसंख्यातः सप्तदशसंख्यां गुणितं कार्यम्। गुणनफलम् अष्टभिः भाजिते सति यच्छेषं तत्, कल्पितेष्टायेन न्यूनीकरणीयं यदि कल्पितेष्टेन शेषायस्य मानमधिकं तदा कल्पितेष्टे अष्ट8 योजयित्वा शेषायमानं न्यूनी करणीयम्। ततः त्रिभिर्भाजिते सति निःशेषे यल्लब्धफलमस्ति(यदि त्रिभिर्भाजिते सति निःशेषो न भवति तदा 8 अस्य गुणांकं भाज्ये योजयित्वा निःशेषः करणीयः) तत् 27 अनेन गुणिते सति प्राप्तगुणनफलं पूर्वागतगुणनफलेन सह संयोजनेन इष्टायनक्षत्रसम्बन्धिपिण्डो भवति।

**उदाहरणम् -** इष्टनक्षत्रम् = रोहिणी(4) , कल्पित इष्टायः = सिंहः (3)

 ISSN – 2349-3100

इष्टनक्षत्र सं. 4 × 17 = 68 गुणनफल।   68 ÷ 8 = लब्धिः 8 , शेषः 4।

कल्पित इष्ट आयः 3, अयं तु शेषात् 4 अल्पः। अतः 3 + 8 = 11,  11 - 4 = 7,

7 ÷ 3 = लब्धिः 2 शेषः 1 । अत्र निःशेषो न भवति अतः 7 + 8 = 15,

15 ÷ 3 = लब्धिः 5 शेष 0 । अत्र निःशेषः जातः, अतः लब्धिः 5 × 27 = 135,

135 + पूर्वगुणनफलं 68 = 203 अभीष्टपिण्डमानम्।

उपर्युक्तक्षेत्रफले वृद्धिकरणार्थं यदि इष्टसंख्यां = 2, तर्हि 216 अनेन संगुण्य, 216 × 2 = 432 पूर्वानीतपिण्डे योजनेनाभीष्टपिण्डमानं भवति 432 + 203 = 635 गृहपिण्डाङ्कः क्षेत्रफलम्।

3. केशवदैवज्ञस्य विधिस्तु इष्टनक्षत्रम् अष्टभिर्विभज्य प्राप्तं शेषमानम् अभीष्टायात् न्यूनीकरणीयम्, अत्र यदि शेषमानं अभीष्टायात् न शोधितं स्यात्तदा अभीष्टाये अष्टसंख्यां संयोज्य पूर्वोक्तशेषमानं शोधितं करणीयम् । ततः प्राप्तशेषमानं एकाशीतिसंख्यया (81) संगुण्य प्राप्तगुणनफले सप्तदशसंख्यया गुणितम् इष्टनक्षत्रसंख्यां युक्तं कार्यम्। तत्युक्तफलं 216 संख्यया विभाजितम्, शेषमभीष्टायनक्षत्रोत्पन्नं पिण्डमानं भवति। यद्यधिकं पिण्डमानमभीष्टं तदा 216 अस्य गुणांकान् योजनीयमिति भावः।

**उदाहरणम् -** इष्टनक्षत्रम् = रोहिणी(4), कल्पित इष्टायः = सिंहः (3)

इष्टनक्षत्र सं. 4 ÷ 8 = लब्धिः 0, शेषः 4।

कल्पित इष्ट आयः 3, अयं तुशेषात्अल्पः। अतः 3 + 8 = 11,  11 - 4 = 7,  7 × 81 = 567,  17 × 4 इष्ट नक्षत्रसं. = 68,  567 + 68 = 635,

635 ÷ 216 = लब्धिः 2 शेषः 203। शेषः 203 = अभीष्टपिण्डम्।

उपर्युक्तक्षेत्रफले वृद्धिकरणार्थं यदि इष्टसंख्यां = 2, तर्हि 216 अनेन संगुण्य, 216 × 2 = 432 पूर्वानीतपिण्डे योजनेनाभीष्टपिण्डमानं भवति 432 + 203 = 635 गृहपिण्डाङ्कः क्षेत्रफलम्।

**विशेषः -** गृहपिण्डज्ञानानन्तरं गृहकर्तुः हस्तात्मकस्य विस्तारमानस्य कल्पना कृत्वा गृहपिण्डं (क्षेत्रफलं) विस्तारमानात् भाजिते सति हस्तात्मकं दैर्घ्यमानं लभ्यते। **उदाहरणम्** – 635 ग्रहक्षेत्रफलम्, कल्पितः विस्तारः = 25 हस्तमितम्, अतः दैर्घ्यमानम् यथा = 635 ÷ 25 = 25.4 हस्तमितम् । यदि हस्तात्मकं गृहपिण्डं कल्पितविस्तारमानेन विभाजनेन अपि निःशेषः न भवति चेत्तदा शेषः चतुर्विंशतिभिः (24) संगुण्य पुनः विस्तारेण वभाजनेन लब्धिः अंगुलत्मकं भवति। तथा पुनः अनशिष्टः शेषः अष्टभिः(8) संगुण्य विस्तारेण विभाजनेन लब्धि यवः आगच्छतीति दैर्घ्यमानं लभ्यते। यथा –

25 | 635 | 25 हस्तः
625
10
× 24
25 | 240 | 9 अगुलम्
225
15
× 8
25 120 4 यवः अर्धादिकं रूपं ग्राह्यमिति 5 यवः स्वीकरणीयः।
100
20 | शेषः

अत्र यदि ग्रहक्षेत्रफलम् 635 स्यात्तदा गृहस्य विस्तारः 25 हस्तात्मकः, दैर्घ्यं 25ह.9अ.5य. एतावत् भवति। तत्रापि ग्रहेशस्य जेष्ठपत्न्याः, अथवा जेष्ठपुत्रस्य अथवा कर्मकारस्य हस्तेन विस्तारादिमानानां ग्रहणं कृत्वा गर्भगृहस्य (ब्रह्मस्थानस्य)निर्माणं करणियम्।

1- $(635 \times 4) \div 27 = 94$ लब्धिः, शेषः = 2 = योगः ।

2- $(635 \times 8) \div 120 = 42$ लब्धिः, शेषः = 40 = आयुः ।

अतः निम्नप्रकारेण आयादि शेषस्य शुभाशुभफलं ज्ञातुं शक्यते ।

**3. आयसाधनं तत्फलञ्च –**

विस्तृतिदैर्घ्ययोः परस्परं गुणनं कार्यम्, तदनन्तरं यद्गुणनफलं तदष्टभिः भाजिते सति यदवशिष्टं शेषफलं सः ध्वजाद्याष्टायानां मध्ये कश्चन एकायो भवेत् । यदि कश्चिद् अभीष्टगृहस्य विस्तृतिः = 25 हस्ताः, एवं दैर्घ्यम् = 27.48 हस्ताः स्युस्तदा $25 \times 27.48 = 687$ गुणनफलं लभ्यते। तदष्टभिः भाजिते सति $687 \div 8 = 85$ लब्धिः, शेषः 7 भवति । ∴ अत्र सप्तशेषत्वेन गजायः भवति। एषः आयः प्रायशः गृहनिर्माणे शुभः स्यात् । ध्वजाद्यायानां दिशा-शुभाशुभफलानि च –

**ध्वजो धूम्रो हरिश्वागौ खरेभौ वायसोष्टमः। पूर्वादिदिक्षु चाष्टानां ध्वजादीनामवस्थितिः।।**
**कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम्। रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात्।।**(बृ.वास्तु.आया.श्लो -4,5)

**शुभाशुभफलचक्रम्**

| शून्यादि शेषः | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 0 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| आय नामः | ध्वज | धूमः | सिंहः | श्वानः | वृषः | खरः | गजः | ध्वाक्षः |
| दिशा | पूर्वा | आग्नेया | दक्षिणा | नैऋत्या | पश्चिमा | वायव्या | उत्तरा | ऐशान्या |
| फलम् | शुभः | शुभः | अशुभः | शुभः | अशुभः | शुभः | अशुभः | अशुभः |
| फलम् | कीर्तिलाभः धनलाभः | शोकः भ्रमः | जयः लक्ष्मीयुक्तः | शत्रुयुक्तः कलहः | धनलाभः धान्ययुक्तः | दरिद्रता स्त्रीनाशः | सुखः पुत्रलाभः | रोगयुक्तः शून्यता |

अत्र गृहपिण्डात् आयसाधनं यथा - $(635 \times 9) \div 8 = 714$ लब्धिः, शेषः = 3 = सिंहस्य आयः । अतः शेषस्य सिंहायस्य शुभफलं लभ्यते।

**4. वारासाधनं तत्फलञ्च –**

गृहनिर्माणार्थप्रयुक्तभूमेः क्षेत्रफलं नवभिः संगुण्य सप्तभिः भाजते सति प्राप्तशेषाङ्कः एकादिशेषानुसारं क्रमशः सूर्य-चन्द्र-मङ्गल-बुध-गुरु-शुक्र-शनैश्चराश्च इमे वाराधिपाः भवन्ति। तद्यथा -

| शून्यादि शेषः | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| वारः नाम | शनिः | रविः | सोमः | भौमः | बुधः | गुरुः | शुक्रः |
| फलम् | शुभः | अशुभः | शुभः | अशुभः | शुभः | शुभः | शुभः |

अत्र गृहपिण्डात् वारसाधनं यथा - $(635 \times 9) \div 7 = 816$ लब्धिः, शेषः = 3 = मङ्गलवारः । अतः शेषस्य मङ्गलवारस्य अशुभफलं लभ्यते।

**5. अंशानयनं तत्फलञ्च –**

गृहस्य क्षेत्रफलं षड्भिः संगुण्य नवभिर्भाजिते सति यच्छेषमानं तदेकादिशेषानुसारं प्रथमद्वितीयादि अंशकाः भवन्ति। तेषां अंशानां स्वामिनः अपि क्रमेणैव सूर्य-चन्द्र-भौम-राहु-गुरु-शनि-बुध-केतवः सन्ति। तत्र सूर्य-भौम-शनीनामंशकाः, वाराश्च सदा अग्निभयकारकाः भवन्ति। स्पष्टार्थं चक्रं यथा -

| शून्यादि शेषः | 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अंश नामः | शुक्रः | सूर्यः | चन्द्रः | भौमः | राहु | गुरुः | शनिः | बुधः | केतु |
| फलम् | शुभः | अशुभः | शुभः | अशुभः | शुभः | शुभः | अशुभः | शुभः | शुभः |

अत्र गृहपिण्डात् अंशसाधनं यथा - $(635 \times 6) \div 9 = 423$ लब्धिः, शेषः = 3 = भौमस्य अंशः । अतः शेषस्य भौमांशस्य अशुभफलं लभ्यते।

ISSN – 2349-3100

### 6. द्रव्य-ऋणयोरानयनं तत्फलञ्च -

गृहस्य क्षेत्रफलं अष्टभिः संगुण्य द्वादशभिः भाजिते सति यच्छेषमानं तद्द्रव्यं भवेत्। तत्र क्रमशः द्रव्याणां नामानि यथा – वस्त्राणि, शस्त्राणि, पुस्तकानि, धनानि, धान्यानि, वसुन्धरा, कुटुम्बम्, विद्या, पशुः, वाटिका, पात्राणि, आभूषणाश्च । तद्यथा -

| शेषाङ्कः | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | 11 | 12 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| द्रव्याणि | वस्त्राणि | शस्त्राणि | पुस्तकानि | धनानि | धान्यानि | वसुन्धरा | कुटुम्बम् | विद्या | पशुः | वाटिका | पात्राणि | आभूषणा |

अत्र गृहपिण्डात् द्रव्यसाधनं यथा - (635 × 8) ÷12 = 423 लब्धिः, शेषः = 4 = धनद्रव्यम् । गृहस्य क्षेत्रफलं त्रिभिर्गुणिते सति अष्टभिर्भातितञ्च यत् एकाद्यवशिष्टमानं तस्य ऋणसंज्ञा स्यात्। अर्थात् एकादिशेषानुसारम् अष्टविध-ऋणानि ज्ञेयानि। अत्र ऋणस्य वचाराय उक्तमस्ति यत् - "**धनादिकं गृहं वृद्धौ निर्धनाय ऋणादिकंम्**" अर्थात् ऋणसंख्यात् द्रव्यसंख्या यदि अधिकं भवेत्तदा गृहस्य शुभफलं वाच्यम्, विपरीतार्थे – ऋणसंख्यात् द्रव्यसंख्या यदि अल्पः स्यात्तदा गृहस्य अशुभफलं वाच्यम्। तद्यथा गृहपिण्डात् ऋणसाधनम् - (635 × 3) ÷8 = 238 लब्धिः, शेषः = 1 = ऋणः । अतोऽत्र ऋणसंख्या 1 एकोऽस्ति। एवं द्रव्यसंख्या 4 चत्वारः। तेन ऋणसंख्यात् द्रव्यसंख्या अधिकं वर्तते, अतः गृहस्य शुभफलं भवति।

### 7. नक्षत्रज्ञानं तत्फलञ्च – गृहपिण्डं गजैर्हत्वा सप्तविंशतिभिर्भजेत् । यच्छेषं तद्भवेदृक्षमश्विन्यादिक्रमेण वै ।।(बृ.वास्तु.द्रव्या.श्लो -21)

गृहस्य क्षेत्रफलं अष्टभिः संगुण्य सप्तविंशतिभिः विभाजिते सति यच्छेषं तत् अश्विन्यादि क्रमेण नक्षत्रं भवेत्। तद्यथा - 1 शेषे सति अश्विनी, 2 शेषे सति भरणी, 3 शेषे सति कृतिका, 4 शेषे सति रोहणी, 5 शेषे सति मृगशिर्षः, 6 शेषे सति आर्द्रा, 7 शेषे सति पुनर्वसुः, 8 शेषे सति पुष्यः, 9 शेषे सति अश्लेषा, 10 शेषे सति मघा, 11 शेषे सति पू.फा., 12 शेषे सति उ.फा., 13 शेषे सति हस्तः, 14 शेषे सति चित्रा, 15 शेषे सति स्वाती, 16 शेषे सति विशाखा, 17 शेषे सति अनुराधा, 18 शेषे सति ज्येष्ठा, 19 शेषे सति मूलः, 20 शेषे सति पू.षा., 21 शेषे सति उ.षा., 22 शेषे सति श्रवणा, 23 शेषे सति धनिष्ठा, 24 शेषे सति शतभिषा, 25 शेषे सति पू.फा. 26 शेषे सति उ.फा., शून्य(0)शेषे सति ऱेवती इति नक्षत्राणि वक्तव्यानि सन्ति। तद्यथा गृहपिण्डात् नक्षत्रसाधनम् –

(635 × 8) ÷27 = 188 लब्धिः, शेषः = 4 = रोहिणीनक्षत्रम् ।

नक्षत्रस्य शुभाशुभफलानां ज्ञानं तारानुसारेण भवति । अत्र तारा विचारं यथा ग्रहेशस्य नामनक्षत्रतः गृहनक्षत्रं यावत् गणयित्वा प्राप्तसंख्या नवभिः 9 भाजिते सति यच्छेषं तदेकादि शेषानुसारं नवताराणां ज्ञानं भवति। यथा एकशेषे जन्म, 2 शेषे संपत्, 3 शेषे विपत्, 4 शेषे क्षेमः, 5 शेषे प्रत्यरिः, 6 शेषे साधकः, 7 शेषे वधः, 8शेषे मित्रम्, शून्य(0)शेषे अतिमित्रञ्च ताराक्रमम् । तेषां ताराणां फलं यथा

**विपत्प्रदा विपत्तरा प्रत्यरिः प्रतिकूलदा । निधनाख्याश्च तारास्तु सर्वथा निधनप्रदाः।।**(बृ.वास्तु.द्रव्या.श्लो -22)

| शून्यादिशेषः | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 0 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| तारानामः | जन्म | संपत् | विपत् | क्षेमः | प्रत्यरिः | साधकः | वधः | मित्रम् | अतिमित्रम् |
| फलम् | शुभः | शुभः | अशुभः विपत्प्रदा | शुभः | अशुभः प्रतिकूलदा | शुभः | अशुभः निधनम् | शुभः | शुभः |

यदि गृहकर्तुः नाम दोलगोविन्दः स्यात्तदा तस्य नामानुसारेण नक्षत्रं रेवती, मीनराशिः भवति। अतः रेवतीनक्षत्रतः गृहनक्षत्रं रोहणीं यवात् गणयित्वा प्राप्तसंख्या 5 पञ्च अस्ति। एषा संख्या नवभिः विभाजिते सति शेषः 5 अर्थात् प्रत्यरितारा भवति। तस्याः तारायाः फलं अशुभफलं प्रतिकूलदा भवतीति भावः।

### 8. तिथिसाधनं तत्फलञ्च –

गृहस्य क्षेत्रफलं अष्टभिः संगुण्य पञ्चदशभिः भाजिते सति यच्छेषं तदेकादिशेषानुसारं प्रतिपदादितिथिः ज्ञेया। अर्थात् 1 शेषे प्रतिपदा, 2 शेषे द्वितिया, 3 शेषे तृतीया, 4 शेषे चतुर्थी, 5 शेषे पञ्चमी, 6 शेषे षष्ठी, 7 शेषे सप्तमी, 8 शेषे अष्टमी, 9 शेषे नवमी, 10 शेषे दशमी, 11 शेषे एकादशी, 12 शेषे द्वादशी, 13 शेषे त्रयोदशी, 14 शेषे चतिर्दशी, शून्य(0)शेषे पूर्णिमा ज्ञातुं शक्यते ।

अत्र गृहपिण्डात् तिथिसाधनं यथा - (635 × 8) ÷15 = 338 लब्धिः, शेषः = 10 = दशमी तिथिः ।

प्रकारान्तरेण तिथिसाधनं यथा – गृहपिण्डमानं चतुर्दशभिः संगुण्य त्रिंशत्संख्यया भजनेन यच्छेषमानं प्राप्तते तत् एकादिशेषानुसारं क्रमशः शुक्लप्रतिपदातितिथितः तिथिसंख्या ज्ञेया। गृहपिण्डसाधने अमावास्या, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी चेताः तिथयः वर्जनीयाः सन्ति। तद्यथा – (635 × 14) ÷ 30 = 296 लब्धिः, शेषः = 10 = दशमी तिथिः ।

**असि.प्रो. ज्योतिषम् रा.सं.संस्थानम्, मानितवि.वि.भोपालपरिसरः,भोपालम्**

 ISSN – 2349-3100

# Historical Importance of Vidyapati

**Kiran Mishra**

**Vidyapati (1352-1448),** also known as '*Maithil kavi kokil'* was a poet of Maithili language and a Sanskrit writer. Born in the *Bisfi* village of Madhubani district of Bihar. He is the heritage and the pride of Bihar especially Mithila region which consists of parts from Nepal. Vidyapati was the one who started the legacy of poetry in Maithili, Bengali and Oriya literature. He is known for his love poetries following the love story between Radha and Krishna, as well as, for his devoted *bhajans* for Lord Shiva and the goddess of Power *devi durga*. Many equate him with Dante and Chaucer for making the languages he wrote in prosper like these legends from Italy and England. One cannot go through the region of Mithila without noticing the influence of Vidyapati on his motherland.

**Vidyapati and Lord Shiva**: The story of Ugna There is a famous folklore about Vidyapati that Lord shiva was so pleased with the poet's devotion towards himself that he decided to serve him at his home in disguise of *'Ugna'* and simultaneously help him in the other aspects of his life.

- One day, Vidyapati received an invitation to participate in a royal function of the king of Mithila, Shivasimha. He took Ugna with him and they left for the king's capital. On the way the poet felt very thirsty but it was a huge barren land where he saw no sign of water. The helpless poet finally requested Ugna to bring some water. He fell on the ground out of thirst. Ugna, who was none but Lord Shiva himself, took out a jug of water from his matted hair (jata), revived him to consciousness and gave the poet water to drink. The poet felt the taste of Ganga-water and immediately asked Ugna from where he had brought it. Ugna tried to make some false story but failed to do so. Finally, he appeared as Shiva, in his original form, before the poet. Lord shiva warned him not to tell anyone about Ugna's real identity. Once Sushila, the wife of Vidyapati assigned some domestic responsibility to Ugna, which he failed to deliver according to her given instructions. She became angry with him and started beating him with a broom. This erratic behaviour of Sushila made Vidyapati frustrated that Shiva, of whom he was a great devotee, should not be abused and humiliated. He could not control himself and shouted at her to stop and revealed that he was Lord Shiva himself; and at that very moment Ugna disappeared. Vidyapati realised his mistake. He left his house wandering through many temples, rivers and jungles in search of Ugna. Finally, Vidyapati found Ugna in Nandanvana. Shiva told him that he would not go back to his house but would help him whenever required. Nevertheless, he wrote wonderful poems even after the incidence. His collection of 500 love poems is a treasure to Maithili literature. Vidyapati as his name suggests was a master of knowledge and a master of all the languages he dealt with. Every year a festival in his name (Vidyapati mahotsava) is celebrated for 2-3 days in the district of Darbhanga. One can easily decipher the tale of his greatness that even after 600 years of his death, he continues to live through his words. He continues to enrich the literature of Bihar and thus the literature of India. The influence of the lyrics of Vidyapati on the love of **Radha and Krishna** on the **Bengali** poets of the medieval period was so overwhelming that they largely imitated it. As a result, an artificial literary language, known as **Brajabuli** was developed in the sixteenth century. Brajabuli is basically Maithili (as prevalent during the medieval period) but its forms are modified to look like Bengali. Vidyapati's influence reached Odisha through Bengal. The earliest composition in Brajabuli is ascribed to **Ramananda Raya**, the governor of Godavari

 ISSN – 2349-3100

province of the King of Odisha, Gajapati Prataprudra Dev. He was a disciple of **Chaitanya Mahaprabhu**. He recited his **Brajabuli** poems to Chaitanya Mahaprabhu, when he first met him on the bank of river **Godavari** at **Rajahmundry**, southern provincial capital of Kingdom of Odisha in **1511–12**. Other notable **Odia** poets influenced by Vidyapati's poems were Champati Ray and king Pratap Malla Dev (1504–32). Let's go back and touch our roots. Let's show our gratitude to artists like Vidyapati and many more by strengthening our connection to Mithila.

- *Puruṣa Parīkṣā* **deals with moral teachings.Recently Publications Division of Government of India has brought out the Hindi Translation of Purusha Pariksha by Akhilesh Jha. There are 25 stories in the book selected from 44 stories in the original work. Besides, there are scholarly introductions to both Vidyapati and Purusha Pariksha in the book.**
- *Likhanabali* is about writing
- *Bhu-Parikrama*, literal meaning, around the world, is about local geography
- *Vibhāgasāra* is autobiographical in nature
- *Dānavākyāvalī* is about charity
- *Gangāvākyāvalī*
- *Varṣakṛtya*
- *Durgābhaktitaraṅgiṇī*
- *Śaivasarvasvahāra*
- *Kīrttipatākā*
- *Kīrttilatā*

REFRENCES;


1 History of Mithila.

2. *The History and Culture of the Indian People*

*3.cultural heritage of bihar*

*4. history of bihar*

*5cultere of mithila*

6.Mithila Art and Architecture,

7. Mithila in the age of Vidyapati,

8. Antquarian Ramains in Bihar,